समुद्घात

– डॉ. संजीवकुमार गोधा

समुद्घात

लेखक

डॉ. संजीवकुमार गोधा

एम.ए. द्वय (जैन विद्या तुलनात्मक धर्म दर्शन, इतिहास)

नेट, एम.फिल (जैन दर्शन), पी-एच.डी.

बी-54, जनता कॉलोनी, जयपुर

प्रकाशक

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर-302 015

फोन : 0141-2707458, 2705581

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

समुद्घात : **डॉ. संजीवकुमार गोधा**

प्रथम संस्करण : 3 हजार
(1 मार्च, 2023)

मूल्य : स्वाध्याय

मुद्रक :
देशना कम्प्यूटर
जयपुर

विषय–सूची

1. समुद्घात : भूमिका 1
2. समुद्घात : परिभाषा व भेद 8
3. वेदना समुद्घात 10
4. कषाय समुद्घात 14
5. वैक्रियिक समुद्घात/ विक्रिया समुद्घात 15
6. मारणांतिक समुद्घात 20
7. तैजस समुद्घात 25
8. आहारक समुद्घात 32
9. केवली समुद्घात 40

प्रकाशकीय

जिनागम के चारों ही अनुयोगों के मर्मज्ञ, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान डॉ. संजीवकुमार गोधा अब हमारे बीच नहीं रहे। भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व की जैन समाज उनके प्रवचनों को बड़े आदर से सुनती थी, इतनी अल्पवय में वे सम्पूर्ण जैन समाज के हृदय के हार बन गये थे। आज उनकी रिक्तता की पूर्ति होना असम्भव सा लग रहा है परंतु उनके द्वारा लिखित कृतियों के माध्यम से उनकी कमी की कुछ भरपाई करने का प्रयास कर रहे हैं। आपकी प्रथम प्रकाशित कृति कालचक्र के पांच संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। अब यह नवीनतम कृति समुद्घात आपके हाथों में है।

यह तो सर्वविदित ही है कि छह द्रव्यों का समूह विश्व कहलाता है। प्रत्येक द्रव्य में प्रदेशत्व नामक सामान्य गुण विद्यमान है। आत्मा भी एक द्रव्य है तथा उसमें भी प्रदेशत्व नामक गुण है जिससे उसका एक निश्चित आकार है। समुद्घात की विषयवस्तु आत्मा के आकार को लेकर ही है जिसे आगम के परिप्रेक्ष्य में स्व. डॉ. संजीव गोधा जी ने सहज व सरल ढंग से इस कृति में समझाने का प्रयत्न किया है। कृति देखने में लघुकाय अवश्य है पर देखन में छोटे लगें घाव करें गंभीर की लोकोक्ति को चरितार्थ कर रही है। आपने समुद्घात की विषयवस्तु को गागर में सागर भरने का कार्य किया है। इसके लिए समाज आपका ऋणी रहेगा।

डॉ. संजीव जी ने तीन लोक विषय पर पीएच.डी. की तथा 13 ग्रंथों का संपादन व अनेक शोध लेख लिखे हैं। कुछ पुस्तकों का प्रणयन भी आपके द्वारा किया गया है जिनका प्रकाशन यथाशीघ्र किया जाएगा।

इस कृति के प्रकाशन का दायित्व सदा की भांति विभाग के प्रभारी डॉ. अखिल बंसल ने बखूबी सम्हाला है, श्री अनिलजी खनियाँधाना का सहयोग भी सराहनीय रहा है अतः दोनों का आभार। इस कृति के माध्यम से आत्मा के असंख्यात प्रदेशों का कब कहाँ और कैसे क्षेत्र से क्षेत्रांतर होता है इस सूक्ष्म विषय को बड़ी ही सरलता से समझाने का प्रयास किया है। सभी विज्ञजन अपना आत्मकल्याण करें यही भावना है। कृति स्वाध्याय हेतु डॉ. संजीवकुमार गोधाजी की तेरहवीं पर सभी आत्मार्थियों को भेंट की जा रही है इसके लिए उनके पिता श्री महेन्द्रकुमर गोधा, माता श्रीमती मंजु गोधा, धर्मपत्नी श्रीमती संस्कृति गोधा एवं सुपुत्र चि. आर्जव गोधा का आभार।

विपिन जैन 'शास्त्री', मुम्बई

प्रकाशन मंत्री

अंतर्भावना

इस दुषम पंचम काल में जिनदेव का जब हो विरह।
तब मात सम उपकार करते शास्त्र ही आधार हैं।।

श्री संजीवकुमारजी गोधा सरल शैली में प्रवचन करने वाले जन-जन के प्रिय विद्वान हैं।

बाल्यकाल से ही उनकी धर्म में रुचि रही है। विवाह उपरांत भी वे घर-गृहस्थी के विकल्पों में अधिक नहीं उलझे और निरंतर तत्व प्रचार ही करते रहे। जिसकी मैं साक्षी रही हूँ।

उनकी भावना जिनधर्म के प्रचार-प्रसार की ही रही है। जिस हेतु उन्होंने अनेक ग्रंथों पर प्रवचन तथा लेखन कार्य किया है।

जिनमें से यह प्रस्तुत कृति समुद्घात आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

सभी इसका लाभ लेते हुए मोक्षमार्ग में अग्रसर हों इसी मंगल भावना के साथ...

– संस्कृति गोधा

प्रस्तुत कृति श्रीमती संस्कृति-संजीवकुमारजी गोधा की ओर से स्वाध्याय हेतु सप्रेम भेंट।

समुद्घात : भूमिका

यह सम्पूर्ण विश्व छह द्रव्यों का समुदाय है, छह द्रव्यों के अतिरिक्त इस विश्व में अन्य कुछ भी नहीं है।

प्रत्येक द्रव्य का कोई न कोई आकार अवश्य होता है; क्योंकि प्रत्येक द्रव्य में प्रदेशत्व नाम का एक सामान्य गुण है। आत्मा भी एक वस्तु (द्रव्य) है, उसमें भी प्रदेशत्व नाम का गुण है; अतः उसका भी एक निश्चित आकार है। समुद्घात की चर्चा एक प्रकार से आत्मा के आकार की ही चर्चा है।

प्रश्न : क्या आत्मा का भी आकार होता है? आत्मा तो निराकार है ना।

उत्तर : इन्द्रियों के द्वारा ज्ञात न होने के कारण तथा पौद्गलिक शरीर आदि आकारों से भिन्न बताने के लिये आत्मा को निराकार कहा जाता है। वस्तुतः ज्ञान नेत्रों द्वारा ज्ञात होने योग्य आत्मा का निश्चित आकार है, जो केवलज्ञानियों के द्वारा प्रदेश प्रत्यक्ष रूप से जाना जाता है। जगत में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसका कोई आकार न हो। प्रत्येक द्रव्य/वस्तु में एक प्रदेशत्व नाम का गुण होता है। जिसके कारण द्रव्य अपने आकार सहित ही होता है। आत्मा भी एक द्रव्य है, अतः उसमें भी प्रदेशत्व नामक गुण होने से उसका भी निश्चित आकार है।

यथा – पुद्गल द्रव्य का आकार एक प्रदेश, संख्यात प्रदेश, असंख्यात प्रदेश तथा अनंतप्रदेश के आकार रूप होता है, धर्म द्रव्य का आकार लोकाकाश प्रमाण कहा गया है और धर्म द्रव्य के समान ही अधर्म द्रव्य का भी आकार लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेश वाला कहा है तथा आकाश द्रव्य अनंत प्रदेशों के आकार वाला है और अंत में काल द्रव्य का आकार एक प्रदेश बराबर है।

अब प्रश्न उठता है कि आत्मा का आकार कैसा है? यह तो सर्व विदित है कि संसार दशा में जीव शरीर सहित ही होता है, वह जिस शरीर में रहता है उस शरीर का आकार ही व्यवहार से आत्मा का आकार कहा गया है।

आचार्य योगीन्दु देव लिखते हैं–

णिच्छइँ लोय–परमाणु मुणि, ववहारे सुसरीरु।
एहउ अप्प–सहाउ मुणि, लहु पावहि भव–तीरु।।
व्यवहार देह प्रमाण अर परमार्थ लोक प्रमाण है।
जो जानते इस भांति वे निर्वाण पावें शीघ्र ही।।24।।

अर्थात् आत्मा का आकार व्यवहार से देह प्रमाण तथा निश्चय से लोक प्रमाण अर्थात् असंख्यात प्रदेशी है। जो आत्मा के आकार को इसप्रकार जानते हैं; वे शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

यहाँ व्यवहार से आत्मा को देह प्रमाण कहा गया है। पर वह कौन से देह प्रमाण है, इसकी चर्चा द्रव्यसंग्रह में नेमिचंद्राचार्य करते हैं–

अणुगुरु देहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा,णिच्छयणयदो असंखदेसो वा।।10।।

अर्थात् यह जीव समुद्घात के अतिरिक्त अवस्था में व्यवहार नय की अपेक्षा से संकोच–विस्तार के कारण अपने छोटे अथवा बड़े शरीर प्रमाण रहता है और निश्चयनय की अपेक्षा से असंख्यात प्रदेशी है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिसका जैसा शरीर है, वह आत्मा उस शरीर जैसे आकार का है। चींटी का शरीर हो तो वैसे आकार का, हाथी का शरीर हो तो वैसे आकार का; जिसका जैसा शरीर है, उसका आत्मा भी उसी आकार का होता है। यदि आत्मा छोटे शरीर में हो तो छोटे तथा बड़े शरीर में हो तो बड़े आकार का होता है। इसप्रकार यह आत्मा समुद्घात के अलावा शेष सभी परिस्थितियों में शरीर नामकर्म के उदय से होने वाले

संकोच–विस्तार वाला है तथा समुद्घात के काल में यह आत्मा शरीर से बाहर फैलता है। इसे घड़े आदि विविध पात्रों में स्थित दीपक की तरह बताते हुए आचार्य उमास्वामी लिखते हैं–

प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत्। (तत्वार्थ सूत्र,5/16)

अर्थात् आत्मा के प्रदेशों का संकोच और विस्तार दीपक के प्रकाश के समान होता है।

जैसे शरीर जन्म से लेकर वर्तमान अवस्था तक निरन्तर वृद्धिंगत हुआ है, उसमें शरीर का आकार तो बड़ा ही है; पर साथ–साथ आत्मा का भी आकार बड़ा है, उसका भी फैलाव हुआ है; परन्तु ये सभी कथन व्यवहार से ही हैं।

निश्चय से तो आत्मा सदाकाल लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशी ही है। अर्थात् जितने लोकाकाश के प्रदेश हैं, उतने ही आत्मा के प्रदेश हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जब आत्मा सम्पूर्ण लोक में व्याप्त होता है, तब लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर आत्मा का एक–एक प्रदेश होता है; एक प्रदेश भी कम–ज्यादा नहीं होता। इसप्रकार यह आत्मा व्यवहार से शरीर प्रमाण और परमार्थ से लोक प्रमाण है।

दीपक का उदाहरण भी बड़ा ही सटीक है। जैसे यदि दीपक के ऊपर ग्लास रखा है तो उसका प्रकाश ग्लास के आकार रूप हो जाएगा, यदि उससे बड़ा कोई बर्तन रखा है तो उसका प्रकाश उस बड़े बर्तन के आकार रूप हो जाएगा, यदि उस दीपक को बंद कमरे में रखा गया है तो उसका प्रकाश कमरे के आकार रूप हो जाएगा। इसी तरह संसार अवस्था में आत्मा का आकार छोटे–बड़े शरीर प्रमाण रहता है। जैसे–जैसे देह परिवर्तित होती जाती है, वैसे–वैसे आत्मा के प्रदेशों का भी संकोच–विस्तार होता जाता है।

शंका : आप कह रहे हैं कि आत्मा के प्रदेश शरीर से बाहर तक

फैल जाते हैं। आत्मा कोई दूध, पानी की तरह वस्तु है क्या ? जो बाहर तक फैल जाता है। आत्मा के फैलने की बात समझ में नहीं आई।

समाधान : अरे भाई ! आत्मा कोई पौद्गलिक स्कंध रूप वस्तु नहीं है, जो बिखरकर फैल जाये। आत्मा एक अभेद/अखण्ड पदार्थ है, इसके टुकड़े नहीं होते। आत्मा के फैलने का अर्थ उसके प्रदेशों के विस्तार से है। आत्मा के प्रदेशों में संकोच-विस्तार की सामर्थ्य होती है। वे आत्मा के प्रदेश (समुद्घात को छोड़कर) शरीर के प्रमाण में रबड़ की तरह फैलते और सिकुड़ते रहते हैं।

शंका : जब यह आत्मा चींटी जैसे छोटे शरीर में रहता है, तब सिकुड़कर कम जगह में रहने से आत्मा को बहुत तकलीफ होती होगी?

समाधान : नहीं भाई । ऐसा नहीं है। आकार के छोटे-बड़े होने से सुख-दुख का संबंध नहीं है। दुःख का मूल कारण तो शरीर में अपनापन करना है। यदि आकार मात्र से सुख-दुख हो तो भगवान ऋषभदेव 500 धनुष (2000 हाथ) आकार वाले होने से ज्यादा सुखी एवं भगवान महावीर 7 हाथ वाले होने से कम सुखी हो जायेंगे; किन्तु ऐसा नहीं है, दोनों ही अनंत सुखी हैं। साढ़े तीन हाथ से लेकर सवा पाँच सौ धनुष के आकार वाले सभी सिद्ध परमात्मा एक समान ही सुखी होते हैं।

शंका : क्या आत्मा का आकार छोटा-बड़ा होता रहता है? आत्मा का कोई निश्चित आकार नहीं है क्या ?

समाधान : प्रत्येक आत्मा असंख्यात प्रदेशी है, यही उसका निश्चित प्रमाण(आकार) है। प्रदेशों की संख्या की दृष्टि से आत्मा के प्रदेश लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर हैं। आत्मा एवं लोकाकाश के प्रदेशों में परस्पर एक भी प्रदेश कम-ज्यादा नहीं है। योगसार ग्रन्थ में योगेन्दुदेव ने निश्चय से आत्मा का आकार लोकप्रमाण बताया है।

आत्मा का आकार निश्चय से लोकप्रमाण बताया जाने पर भी यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि कई जीव इस लोक में ऐसे भी हो सकते हैं, जिनका आत्मा अनादि से अनंत काल के मध्य कभी भी लोकप्रमाण विस्तार को प्राप्त न हुआ है और न ही होगा। आत्मा के लोकप्रमाण होने की स्थिति मात्र लोकपूरण नामक केवली समुद्घात के समय ही बनती है।

शंका : तो फिर निश्चय से आत्मा को लोकप्रमाण कहने का क्या औचित्य है ? यह जीव जिस अवस्था को कभी भी प्राप्त न करे उसे निश्चय कैसे कहा जा सकता है ?

समाधान : यहाँ निश्चय से कहकर आचार्यदेव आत्मा के प्रदेश एवं लोकाकाश के प्रदेशों की संख्या की समानता बताना चाहते हैं। यह समानता लोकपूरण समुद्घात के समय स्पष्ट ख्याल में आती है, क्योंकि उससमय जब आत्मा के प्रदेश सम्पूर्ण लोक में फैलते हैं, तब लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर आत्मा का एक-एक प्रदेश रहता है। यही आत्मा के प्रदेशों की निश्चित संख्या है। इस निश्चितता को बताने के लिये ही आचार्यों ने निश्चय शब्द का प्रयोग किया है। आत्मा के प्रदेशों की यह संख्या कभी भी घटती-बढ़ती नहीं है, चाहे वह संसार अवस्था में किसी भी शरीर में क्यों न रहे।

प्रश्न : यदि आत्मा का आकार संसार अवस्था में शरीर प्रमाण रहता है तो शरीर छूट जाने पर विग्रह गति में क्या होता होगा? क्या विग्रह गति में आत्मा संपूर्ण लोक में फैल जाता है?

उत्तर : नहीं! ऐसा नहीं होता; क्योंकि विग्रह गति में गत्यानुपूर्वी नाम कर्म प्रकृतियों का उदय रहता है। यह गत्यानुपूर्वी नाम कर्म चार प्रकार का है। मनुष्य गत्यानुपूर्वी, देव गत्यानुपूर्वी, नरक गत्यानुपूर्वी और तिर्यंच गत्यानुपूर्वी। ये चार प्रकार की गत्यानुपूर्वी प्रकृतियाँ क्षेत्र विपाकी

हैं। कर्मों की 148 प्रकृतियों में कुछ जीव विपाकी, कुछ क्षेत्र विपाकी, कुछ पुद्गल विपाकी और कुछ भव विपाकी हैं। सभी कर्म प्रकृतियों में क्षेत्र विपाकी प्रकृतियाँ मात्र 4 गत्यानुपूर्वी ही हैं।

ये कर्म प्रकृतियाँ आत्मा के क्षेत्र को इंगित करने वाली हैं। इस जीव को मरण के पश्चात् जिस गति में जाना है, उस गति के योग्य नामकर्म का उदय होता है। यदि नरक गति में जाना है तो नरक गत्यानुपूर्वी, यदि तिर्यंच में जाना है तो तिर्यंच गत्यानुपूर्वी। इसीप्रकार जिस गति में जाना है, उस गति के नाम के साथ गत्यानुपूर्वी शब्द जुड़ जाता है। इस गत्यानुपूर्वी नामकर्म के उदय के कारण ही विग्रह गति में यह आत्मा किसी निश्चित आकार में रहता है। ध्यान रहे! विग्रह गति में उस गत्यानुपूर्वी नाम कर्म का उदय होगा, जिस गति में जाना है; परंतु विग्रह गति में आत्म प्रदेशों का आकार वह होगा; जिस अवस्था में मरण हुआ है।

प्रश्न : मरणोपरान्त यह जीव देह में से किस प्रकार बाहर निकलता है? हमने सुना है किसी के प्राण आँख में से तो किसी के मुँह से निकलते हैं – इस बात में कितनी सत्यता है?

उत्तर : मरण होने पर अर्थात् आयु कर्म समाप्त होने के पश्चात् जब यह जीव देह परिवर्तन के लिये गमन करता है, तब पूर्व देह की अंतिम अवस्था रूप में यह जीव सर्वांग से बाहर निकलता है।

इस दुनिया में बहुत से लोग मृत शरीर में आँखें अथवा मुँह खुला देखकर इसप्रकार की कल्पना करते हैं कि इनका जीव आँख, मुँह, नाक अथवा कान में से निकला होगा; किन्तु यह मान्यता यथार्थ नहीं है। अरे भाई! आत्मा कोई हवा की तरह भौतिक पदार्थ नहीं है, जिसे निकलने के लिए किसी मार्ग की जरूरत पड़े। वह पानी जैसा तरल पदार्थ भी नहीं है, जिसके लिए किसी छिद्र की आवश्यकता हो। वह तो चैतन्यमय अमूर्तिक–अस्पर्शी परम पदार्थ है, जो देह से सर्वांग निकल जाता है।

आयु कर्म को भोगते हुये जीवित अवस्था में भी यह आत्मा देह प्रमाण आकार वाला ही होता है और देह छोड़ने के बाद भी आत्मा का आकार छोड़े हुए शरीर की अंतिम अवस्था जैसा ही होता है। जैसे यदि किसी जीव का देहवियोग बैठे-बैठे हुआ हो, तो उसका आत्मा भी बैठी अवस्था के आकार में ही शरीर के सर्वांग से बाहर निकलकर विग्रहगति में गमन करता है। इसीप्रकार खड़े हुये, लेटे हुये अथवा अन्य किसी भी अवस्था में देहवियोग होने पर यह आत्मा शरीर से उसी आकार में बाहर निकलता है, जिस आकार में आयु पूर्ण हुई हो। किसी का मरण बम विस्फोट होने पर हुआ हो, जिसके कारण उसका शरीर टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गया हो- ऐसी स्थिति में भी आत्मा विस्फोट की तरह फैले हुए एक निश्चित विचित्र आकार से ही विग्रह गति में गमन करता है।

द्रव्य संग्रह में एक और बात का उल्लेख किया है कि भले ही आत्मा का आकार देह प्रमाण कहा हो पर कभी-कभी आत्मा के प्रदेश इस देह से बाहर भी निकलते हैं। ●

हे भव्य आत्माओ! जीव को अन्तर में जो सुख-दुःख की अनुभूति होती है, उन अनुभूतियों को जीव स्वयं अन्तर में स्वानुभव से स्पष्ट जानता है। विचार की उत्पत्ति शरीर में नहीं, जीव में होती है। जीव अरूपी है इसलिए उसके विचारों एवं अनुभूतियाँ भी अरूपी हैं; वे नेत्रादि इन्द्रियों द्वारा दृष्टिगोचर न होने पर भी स्वसंवेदनरूप ज्ञान से जानी जा सकती हैं। इसप्रकार संवेदन करनेवाला तत्त्व ही जीव है। इसप्रकार अरूपी एवं ज्ञानमय जीव का अस्तित्व प्रत्येक को अपने स्वसंवेदनज्ञान से सिद्ध हो सकता है। 'मैं हूँ' ऐसी अपनी अस्ति का जो वेदन करता है, वही जीव है।

समुद्घात : परिभाषा व भेद

मूल शरीर को छोड़े बिना आत्म प्रदेशों के शरीर से बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं। यदि आत्मा के सभी प्रदेश अर्थात् पूरा आत्मा शरीर से बाहर निकल जाये, तो मरण हो जाये। समुद्घात जीवित अवस्था में ही होता है। विशेष बात यह है कि इसमें आत्मा के कुछ प्रदेश शरीर के भीतर एवं कुछ प्रदेश शरीर के बाहर तक फैल जाते हैं, यही अवस्था समुद्घात कहलाती है।

मरण होने पर तो आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न भासित होते ही हैं; किन्तु जीवित रहते हुये भी शरीर और आत्मा दोनों की सत्ता भिन्न-भिन्न प्रदर्शित करने वाला यह समुद्घात वाला प्रकरण ही है।

गोम्मटसार जीवकाण्ड में आचार्य नेमिचन्द्र देव लिखते हैं-

मूलसरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स।

णिग्गमणं देहादो होदि समुग्घादणामं तु।। (गो.जी. 668)

अर्थात् मूल शरीर को न छोड़कर तैजस, कार्मण रूप उत्तर देह के साथ-साथ जीव प्रदेशों के शरीर से बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं।

(द्रव्यसंग्रह, टीका /10/31 में उद्धृत)

❊ तत्त्वार्थराजवार्तिक ग्रंथ में 1/20 पृष्ठ - 77/12 पर आचार्य अकलंकदेव लिखते हैं -

हन्तेर्गमिक्रियात्वात् संभूयात्मप्रदेशानां च बहिरुद्हननं समुद्घातः।

अर्थात् वेदना आदि निमित्तों से कुछ आत्मप्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना समुद्घात है। (गो.जी./जी. प्र. 543/939/3)

(केवली समुद्घात के प्रकरण में) घातने रूप धर्म को घात कहते हैं, जिसका प्रकृत में अर्थ कर्मों की स्थिति और अनुभाग का विनाश

होता है। उत्तरोत्तर होने वाले घात को उद्घात कहते हैं, और समीचीन उद्घात को समुद्घात कहते हैं। (ध.1/1,1.60/302/5)

जिन अवस्थाओं में यह जीव मूल शरीर को छोड़े बिना शरीर से बाहर निकलता है, उसे जिनागम में समुद्घात नाम से पुकारा है। समुद्घात 7 प्रकार के हैं अर्थात् इस जीव के प्रदेश मूल शरीर को छोड़े बिना 7 अवस्थाओं में शरीर से बाहर निकल सकते हैं। सात प्रकार के समुद्घात इस प्रकार हैं –

वेदण कसाय वेउव्विओ मराणंतिओ समुग्घादो। तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु।

अर्थात् वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक, तैजस, आहारक और केवली समुद्घात; ये सात प्रकार के समुद्घात होते हैं।

(रा. वा. 1/20/77/12/); (ध.4/1,3,2/26/5); (गो.जी./मू.667/ 1112) (बृ.द्र.सं/10/30); (गो. जी./जी. प्र. गाथा 543)

1.वेदना समुद्घात
2.कषाय समुद्घात
3.वैक्रियिक समुद्घात
4.मारणांतिक समुद्घात
5.तैजस समुद्घात
6.आहारक समुद्घात
7.केवली समुद्घात

अब आगे क्रमशः इनका विवेचन करेंगे। •

संसार के चाहे जैसे पुण्य संयोग हों, वे जीव को तृप्ति नहीं दे सकते; जीव को तृप्ति दे ह्न ऐसा स्वभाव आत्मा में ही है। निज स्वभाव में सुख का जो भण्डार है, उसे देखते ही अपूर्व सुखानुभव और तृप्ति होती है। उस सुख के लिए किसी बाह्य सामग्री की अपेक्षा नहीं होती। राजवैभवादि चाहे जितने होने पर भी जीव मानसिक चिन्ताओं से दुःखी ही रहता है।

1. वेदना समुद्घात

तत्त्वार्थराजवार्तिक ग्रंथ में वेदना समुद्धात के बारे में आचार्य अकलंकदेव लिखते हैं –

वातिकादिरोगविषादिद्रव्यसंबन्धसंतापापादित वेदनाकृतो वेदनासमुद्धातः। (राजवार्तिक, 1/20/77)

अर्थात् वात–पित्तादि विकार जनित रोग या विषपान आदि की तीव्रवेदना से आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना वेदना समुद्घात है।

तत्थ वेदण समुग्घादो णाम अक्खि–सिरोवेदणादीहिं

जीवाणमुक्कस्सेण सरीरतिगुणविप्फुज्जणं । (ध. 4/1, 3,2/ 26/7)(ध. 7/2.6,1/299/8); (ध. 11/4,2,5,9/18/7)

अर्थात् नेत्र वेदना, शिरोवेदना आदि के द्वारा जीवों के प्रदेशों का उत्कृष्टतः शरीर से तिगुने प्रमाण विसर्पण का नाम वेदना समुद्धात है।

इसीतरह द्रव्यसंग्रह ग्रंथ की टीका (10/31/1) में ब्रह्मदेव सूरि लिखते हैं –

तीव्रवेदनानुभवान्मूलशरीरमत्यक्त्वा आत्मप्रदेशानां बहिर्निगमनमिति वेदना समुद्धातः ।

अर्थात् तीव्र पीड़ा के अनुभव से मूल–शरीर को न छोड़ते हुए जो आत्मा के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना, सो वेदना समुद्धात है।

वेदना समुद्धात में प्रदेशों का विस्तार –

वेदना के वश से जीव प्रदेशों के विष्कम्भ और उत्सेध की अपेक्षा तिगुने प्रमाण में फैलने का नाम वेदना समुद्धात है। (ध. 11 / 4,2,5,9/8/7) (ध. 7/2,6,1,299/8)

परन्तु सभी जीवों के प्रदेश वेदना के वश से तिगुणे ही फैलते हों ऐसा नियम नहीं है। किंतु तरतम रूप से स्थित वेदना के वश से अपने

विषकम्भ की अपेक्षा एक दो प्रदेशादिकों की भी वृद्धि होती है। (ध. 11/4,2,5,9/8/7) (गो. जी. / जी. प्र. /584)

प्रश्न : क्या वेदना समुद्धात सभी जीवों को हो सकता है ?

उत्तर : नहीं, ऐसा नहीं है। निगोद अवस्था में उत्पन्न होने वाले जीव के अतिशय तीव्र वेदना का अभाव होने से विवक्षित शरीर से तिगुणा वेदना समुद्धात सम्भव नहीं है । (ध. 11/ 4,2,5,12/21/2)

प्रश्न : शरीर से सम्बद्ध आत्मप्रदेशों में कुछ आत्मप्रदेशों के खण्डित शरीर में रहने की अपेक्षा से आत्मा का खण्डन होता है अन्यथा तलवार आदि से कटे हुए शरीर के पृथग्भूत अवयवों में कम्पन न देखा जाता ?

उत्तर: खण्डित अवयवों में प्रविष्ट आत्मप्रदेशों में पृथक् आत्मा का प्रसंग भी नहीं आता है; क्योंकि वे फिर से पहले ही शरीर में लौट आते हैं।

प्रश्न: आत्मा के अवयव खण्डित हो जाने पर पीछे फिर एक कैसे हो जाते हैं ?

उत्तर: हम उनका सर्वथा विभाग नहीं मानते । कमलनाल के तंतुओं की तरह आत्मा के प्रदेशों का छेद स्वीकार करते हैं।

तीव्र शारीरिक वेदना के काल में आत्म प्रदेशों का उत्कृष्टतः तीन गुणा तक फैलना वेदना समुद्धात कहलाता है। इसमें आत्मा के एक-दो प्रदेश भी शरीर से बाहर निकल सकते हैं। निगोदिया जीवों के भी वेदना समुद्धात हो सकता है, किन्तु अतितीव्र वेदना का अभाव होने से उनके प्रदेश तीन गुणा नहीं फैलते।

अन्य स्थानों पर इसे **औषध समुद्धात** भी कहा गया है। यदि कोई असाध्य रोग हो और तीव्र वेदना हो, यदि उसके उपचार का विकल्प है तब आत्मा के प्रदेश उस स्थान पर जाकर उस जड़ी-बूटी आदि का स्पर्श करके लौट आते हैं इससे रोग दूर हो जाता है, इसे ही औषध या वेदना समुद्धात कहते हैं।

जगत में ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं कि जिसमें डॉक्टरों ने जबाब दे दिया कि इन्हें ले जाओ ये अब जीवित नहीं रहेंगे और वे ठीक हो जाते हैं तथा वर्षों तक जीवित भी रहते हैं। आखिर ऐसा क्यों हो जाता है? हो सकता है ऐसी घटनाओं के पीछे यह औषध समुद्घात भी कारण हो।

हमें यह चमत्कार जैसा इसलिए लग रहा है; क्योंकि यह अनहोनी जैसी घटना घट गई। जैसे किसी को लास्ट स्टेज का कैंसर था और शरीर से कैंसर के सारे परमाणु ही गायब हो गए। हमें यह चमत्कार-सा दिखता है; किन्तु ऐसी परिस्थितियों में औषध समुद्घात भी कारण हो सकता है। अत: यह कोई चमत्कार नहीं; इसमें बड़ी बात तो यह है कि आत्मा अभेद, अखंड रहता है, वह बीच में से टूटता नहीं है, खण्डित नहीं होता है – यही चमत्कार है।

छिपकली की पूंछ बहुत नाजुक होती है, जब उस पर कोई विपत्ति आती है या उसे कोई छूता है, तब वह अपनी पूंछ छोड़ देती है और वह आगे भाग जाती है, उसकी पूंछ तड़पती रहती है, उसे वेदना है उसके मूल शरीर से लेकर पूँछ तक आत्मप्रदेश फैले हुए हैं। ऐसा नहीं है कि उसके बीच के आत्मप्रदेशों का अभाव हो जाता हो। जब तक पूँछ तड़पती रहती है, तब तक उसमें आत्मप्रदेश मौजूद रहते हैं। पश्चात् आत्मप्रदेश मूल शरीर में मिल जाते हैं।

कभी इससे विपरीत परिस्थिति भी बनती है, वह समुद्घात तो नहीं है; पर उसी जैसा है। जैसे – किसी के हाथ में पैरालिसिस का अटैक आया और पूरा हाथ सुन्न हो गया उस परिस्थिति में हाथ से आत्मप्रदेश सिकुड़ गए और वह पूरा हाथ आत्मप्रदेशों से शून्य हो गया। पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि डॉक्टर इलाज आदि करते हैं तो वापस उस हाथ में आत्म प्रदेश लौट आते हैं।

हम टेलीविज़न आदि पर देखते हैं कि किसी का सिर कट गया और कुछ सेकण्डों तक धड़ लड़ाई करता रहा, तलवार चलाता रहा। सिर तो तड़प रहा है और धड़ लड़ रहा है। यह स्थिति तब तक बनी रहती है जब तक आत्मप्रदेश परलोक गमन नहीं कर जाते।

एक सच्ची घटना है कि हमारे घर पर एक अम्माजी किराये पर रहती थीं, वे फर्स्ट फ्लोर पर झूला झूल रही थीं। अचानक उनके झूले की रस्सी टूटी और वे फर्स्ट फ्लोर से नीचे गिर गईं, गिरने से उनका हाथ कट गया। उनका हाथ बहुत देर तक तड़पता रहा। डॉक्टर भी ऐसे कटे हुए अंगों को एक निश्चित समयावधि तक ऑपरेशन करके जोड़ने का दावा करते हैं और जोड़ भी देते हैं।

पर बात तो यहाँ यह है कि वेदना समुद्धात में आत्मा से तीन गुणा आत्मप्रदेश बाहर निकलते हैं और यदि हम औषध समुद्धात की बात करें तो जड़ी-बूटी के स्थान को स्पर्श करके पुनः लौट आते हैं। ●

जिस पाप क्रिया को रोक पाना संभव न हो, उस असमर्थता को अशक्यानुष्ठान कहते हैं। जैसे भोजन के चौके में कुत्ता, बिल्ली, चूहा और मक्खी एक जैसे माँसाहारी और गंदगी पसन्द प्राणी, एक जैसी अशुद्धि फैलाते हैं, फिर भी कुत्ते को जाली का आधा फाटक लगाकर रोका जा सकता है, अतः उसके चौके में प्रवेश मात्र से चौके की अशुद्धि मानी जाती है और उस भोजन सामग्री को हटाकर पुनः बनाई जाती है। बिल्ली को फाटक से नहीं रोक सकते, वह खिड़की आदि के रास्ते से भी आ जाती है, वह दूध को जूठा करेगी तो दूध फैंकेंगे, सब सामग्री नहीं और चूहा मोरी आदि किसी भी रास्ते से, कहीं से भी आ सकता है अतः यदि वह आटे को जूठा करेगा तो आटे के उस हिस्से को नोंचकर फैंकेंगे, पूरा आटा नहीं। मक्खी के आटे पर बैठने पर आटा नोंचते भी नहीं, मात्र मक्खी को उड़ा देते हैं। घी के पीपे में मक्खी मर भी जाये तो घी से भरा पूरा पीपा नहीं, मात्र मक्खी ही निकाल कर फैंकी जाती है, बस इसी मजबूरी का नाम अशक्यानुष्ठान है। इसमें जिसप्रकार की अशुद्धि का त्याग करना गृहस्थ से संभव नहीं है, वह अशक्यानुष्ठान है।

2. कषाय समुद्घात

राजवार्तिक ग्रन्थ/1/20/77/14 में आचार्य अकलंकदेव कषाय समुद्धात का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखते हैं–

द्वितयप्रत्ययप्रकर्षोत्पादितक्रोधादिकृतः कषायसमुद्घातः।

अर्थात् बाह्य और अभ्यन्तर दोनों निमित्तों के प्रकर्ष से उत्पादित जो क्रोधादि कषायें, उनके द्वारा किया गया कषाय समुद्धात है।

क्रोध भय आदि के द्वारा जीवों के प्रदेशों का उत्कृष्टतः शरीर से तिगुणे प्रमाण विसर्पण का नाम कषाय समुद्धात है। (ध. 4/1,3,2/26/8)

कषाय की तीव्रता से जीवप्रदेशों का अपने शरीर से तिगुणे प्रमाण फैलने को कषाय समुद्धात कहते हैं। (ध. 7/2, 6, 1/299/8)

तीव्र कषाय के उदय से शरीर को न छोड़कर परस्पर में एक दूसरे का घात करने के लिए आत्मप्रदेशों के बाहर निकलने को कषाय समुद्धात कहते हैं। संग्राम में योद्धा क्रोध में आकर लाल–लाल आँखें करके अपने शत्रु को ताकते हैं, यह प्रत्यक्ष देखा जाता है – यही कषाय समुद्धात का रूप है। (कार्तिकेय अनुप्रेक्षा /टी./176/115/19)

क्रोध आदि तीव्र कषायों के काल में आत्मा के प्रदेश एक चक्राकार रूप में शरीर से बाहर निकलते हैं, उसे ही कषाय समुद्घात कहते हैं। कभी–कभी तीव्र क्रोध में आँख, मुँह, कान लाल हो जाते हैं, उस तेज के साथ में आत्मा के प्रदेशों का बाहर निकलना कषाय समुद्धात है। आत्मा के प्रदेश जब भी इस शरीर से बाहर निकलते हैं तब औदारिक शरीर तो नहीं; किन्तु तैजस और कार्मण शरीर तो साथ में रहते ही हैं।

शंका : क्या कषाय और वेदना समुद्धात कषायों की तीव्रता में ही होते हैं? अथवा मंद कषाय या शुभ लेश्याओं के काल में भी ये समुद्धात सम्भव हैं?

समाधान : नहीं, ऐसा नहीं है। देव गति के जीवों में तीन शुभ लेश्यायें ही होती हैं। धवला पुस्तक – 7 में देवों के भी कषाय और वेदना समुद्धात का सद्भाव बताया है। अतः देवों के ये समुद्धात होने से शुभ लेश्या के काल में भी वेदना और कषाय समुद्धात मानने में कोई आपत्ति नहीं है।

3. वैक्रियिक समुद्‌घात/विक्रिया समुद्‌घात

अपने शरीर को विकल्प पूर्वक एक-अनेक, छोटा-बड़ा आदि करने की सामर्थ्य विक्रिया कहलाती है। इस विक्रिया के काल में आत्म प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना ही वैक्रियिक समुद्धात है। देवों और नारकियों का तो शरीर ही वैक्रियिक होता है, उनके द्वारा मूल शरीर के अतिरिक्त अन्य आकार आदि बनाने पर भी यह समुद्धात होता है।

मनुष्यों के यद्यपि औदारिक शरीर ही होता है, तथापि अनेक सामर्थ्यशाली जीवों में विक्रिया से अनेक शरीर आदि बनाने का विधान कहा गया है। तत्त्वार्थसूत्र में **लब्धिप्रत्ययं च** कहकर मनुष्यों के भी उपचार से ऋद्धि के निमित्त से वैक्रियक शरीर कहा गया है। इस प्रकार की विक्रिया किसी-किसी तिर्यंच को भी हो सकती है। नारायण, प्रतिनारायण, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों के अनेक शरीर बनाने की सामर्थ्य है, उनके सभी पृथक् शरीरों में भी आत्मा के प्रदेश व्याप्त रहते हैं।

देव अपनी विक्रिया सामर्थ्य से अनेक शरीर बनाते हैं। देवों का मूल शरीर तो अपने स्थान पर ही रहता है और विक्रिया से बनाये गये अनेक शरीर दूसरे क्षेत्रों में भी चले जाते हैं। जब देव गति के जीव तीर्थंकरों के पंच कल्याणक आदि के प्रसंग में आते हैं अथवा नन्दीश्वर द्वीप आदि में जाते हैं, तब भी उनका मूल शरीर अपने स्थान पर ही रहता है और विक्रिया निर्मित शरीर ही अन्य स्थान पर गमन करता है। उनके आत्मा के प्रदेश मूल शरीर से विक्रिया निर्मित शरीर तक जुड़े रहते हैं। यह वैक्रियिक समुद्धात का ही काल है।

ध्यान रहे, कोई भी पृथक् विक्रिया अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं रह पाती है, अतः वे देव प्रत्येक अन्तर्मुहूर्त में पुनः पुनः विक्रिया करते रहते हैं।

आचार्य अकलंकदेव वैक्रियिक समुद्धात का स्वरुप बताते हुए लिखते हैं -

एकत्वपृथक्त्वनानाविधविक्रियशरीरवाक्प्रचार प्रहरणादि-विक्रिया-प्रयोजनो वैक्रियिकसमुद्धातः। (राज. 1/20/12/77/16)

अर्थात् एकत्व पृथक्त्व आदि नाना प्रकार की विक्रिया के निमित्त से शरीर और वचन के प्रचार, प्रहरण आदि की विक्रिया के अर्थ वैक्रियिक समुद्घात होता है।

वैक्रियिक शरीर के उदय वाले देव और नारकी जीवों का अपने स्वाभाविक आकार को छोड़कर अन्य आकार से रहने का नाम वैक्रियिक समुद्घात है। (ध. 4/1, 3,2/26/8)

विविध ऋद्धियों के महात्म्य से संख्यात व असंख्यात योजनों को शरीर से व्याप्त करके जीव प्रदेशों के अवस्थान को वैक्रियिक समुद्घात कहते हैं। (ध. 7/2, 6,1/299/10)

द्रव्यसंग्रह टीका /10/25/5 में ब्रह्मदेवसूरि लिखते हैं –

मूलशरीरमपरित्यज्य किमपि विकर्तुमात्मप्रदेशानां बहिर्गमनमिति विक्रिया समुद्घातः।

अर्थात् किसी प्रकार की विक्रिया उत्पन्न करने के लिए अर्थात् शरीर को छोटा-बड़ा या अन्य शरीर रूप करने के लिए मूल शरीर का त्याग न करके जो आत्मा के प्रदेशों का बाहर जाना है, उसको विक्रिया समुद्घात कहते हैं।

उक्त प्रमाणों के अनुसार वैक्रियिक शरीर वाले जीवों के द्वारा दूसरा शरीर भी बना लिया जाता है। यहाँ शरीर तो दो हैं; परन्तु दोनों में एक ही आत्मा विद्यमान है। मात्र दो ही नहीं, हजारों शरीरों में भी एक ही समय में एक ही आत्मा व्याप्त रहे, यह वैक्रियिक समुद्घात में सम्भव हो जाता है।

चक्रवर्ती एक ही समय में 96000 रानियों के साथ रहता है। तब भी मूल शरीर से आत्मा के प्रदेश प्रत्येक दूसरे शरीर तक फैले रहते हैं। ऐसी ही सामर्थ्य नारायण, प्रतिनारायण आदि के भी पाई जाती है। रावण अपने अनेक शरीर बना लेता था, यह वैक्रियिक समुद्घात की बात है।

नारकियों और देव गति के जीवों की विक्रिया अलग-अलग प्रकार

की होती है। देवों की विक्रिया पृथक् विक्रिया भी होती है, वे मूल शरीर को छोड़कर भी अनेक शरीर बना सकते हैं। परंतु नारकियों के अपृथक् विक्रिया ही होती है, वे अपने मूल शरीर को ही अस्त्र-शस्त्र आदि रूप बना सकते हैं। नारकी अपने परिणामों के द्वारा विक्रिया से अस्त्र-शस्त्र की रचना करते हैं। उस अस्त्र-शस्त्र की रचना में भी उनकी आत्मा के प्रदेश व्याप्त रहते हैं। यह वैक्रियिक समुद्घात है।

देवों का मूल शरीर हमेशा अपने निवास स्थान पर ही रहता है। वे देव स्वर्गों से मध्य लोक में आते हों या अधो लोक में जाते हों अथवा भवनत्रिक के देव भी आते-जाते हैं तो उनका भी मूल शरीर वहीं भोगों में ही रहता है और वे विक्रिया से बनाये गये दूसरे शरीर से गमन करते हैं; यही कारण है कि उनका वह वैक्रियक शरीर आहार देने के योग्य नहीं होता है।

हमें देवों की महिमा आती है; जबकि देव अनेक बातों में मनुष्यों से अयोग्य सिद्ध होते हैं। जैसे – उन्हें पालकी उठाने का प्रथम अधिकार नहीं, आहार देने का अधिकार नहीं। मुनिराजों को यदि पता चले कि देव आहार दे रहे हैं तो वे आहार नहीं लेते हैं; क्योंकि उनका मूल शरीर भोगों में ही रहता है, इसलिए वे आहार देने के अयोग्य हैं।

14वीं सदी के अपभ्रंश महाकवि रयदु द्वारा लिखित 'भद्रबाहु – चाणक्य-चन्द्रगुप्त कथानक एवं राजा कल्कि वर्णन' नामक पुस्तक में एक कथा आती है कि देवों ने नगर बसाकर चंद्रगुप्त मुनिराज को आहार दे दिया, वे मुनिराज आहार लेकर वापस लौट गए, मुनि संघ में से एक मुनिराज अपना कमंडल वहाँ पर भूल आये थे, जब वे वापस लौटे तो वहाँ उन्हें नगर ही नहीं मिला। उन्होंने यह सारी घटना आचार्यश्री को बताई। आचार्य समझ गये कि देवों ने आहार दिया है, पश्चात् उन्होंने प्रायश्चित देकर शुद्ध कराया।

समवशरण की रचना भी विक्रिया का ही एक प्रकार है। विक्रिया से निर्मित कोई भी रचना अंतर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं टिकती है। समवशरण

का मूल स्वरूप अधिकांशत: विक्रिया से बनता है और उसके निर्माण की सामग्री कुबेर के खजाने से आती है तथा कुछ सामग्री विक्रिया की बनी होती है। जैसे – दो व्यक्तियों में से एक ने तो बना बनाया मकान खरीदा और दूसरे ने मकान बनवाया। नया मकान बनवाने में भी बहुत-सी सामग्री बाजार से बनी बनाई आती है; जिसे बाजार से खरीद कर मात्र सेट किया जाता है। वैसे ही कुबेर के खजाने में भी ऐसा बहुत सामान रखा रहता है, जिसे वह समवशरण में लाकर सजाता है। कुबेर द्वारा सौधर्मेन्द्र के निर्देशन में समवशरण बनाया जाता है।

शंका – तिर्यंच और मनुष्यों के वैक्रियिक शरीर का उदय क्यों नहीं होता है?

समाधान – नहीं, क्योंकि तिर्यंच गति और मनुष्यगति कर्मोदय के साथ वैक्रियिक नामकर्म के उदय का विरोध आता है, अथवा तिर्यंच और मनुष्यगति में वैक्रियिक नामकर्म का उदय नहीं होता है, यह स्वभाव ही है और स्वभाव दूसरे के प्रश्नों के योग्य नहीं होते है, अन्यथा, अतिप्रसंग दोष आ जायगा। इसलिये तिर्यंच और मनुष्यों के वैक्रियिक और वैक्रियिक मिश्रकाययोग नहीं होता है, यह सिद्ध हो जाता है।

शंका – तिर्यंच और मनुष्य भी वैक्रियिक शरीर वाले सुने जाते हैं, इसलिये यह बात कैसे घटित होगी?

समाधान – नहीं, क्योंकि, औदारिक शरीर दो प्रकार का है, विक्रियात्मक और अविक्रियात्मक। उनमें जो विक्रियात्माक औदारिक शरीर है, वह मनुष्य और तिर्यंचों के वैक्रियिकरूप से कहा जाता है। उसका यहाँ पर ग्रहण नहीं किया है, क्योंकि उसमें नाना गुण और ऋद्धियों का अभाव है। यहाँ पर नाना गुण और ऋद्धियुक्त वैक्रियिक शरीर का ही ग्रहण किया है और वह देव और नारकियों के ही होता है।

वैक्रियक ऋद्धि, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक समुद्घात के स्वरूप में किंचित् अंतर है?

वैक्रियक ऋद्धि – विविहगुणइड्ढिजुत्तं वेउव्वियमिदि। अर्थात् विशेष प्रकार की क्रिया को विक्रिया कहते हैं। (ध.4/1/9/76) इसमें शरीर को छोटा-बड़ा, हल्का-भारी आदि अनेक आकाररूप करने की विचित्ररूप क्रिया होती है। शरीर को अनेक आकार रूप से बदलने की क्रिया ही विक्रिया ऋद्धि है।

विक्रिया ऋद्धि के अनेक भेद हैं। यह श्रमणों को तप विशेष से प्राप्त होती है। (ति.प. – 4/1034) यह ऋद्धि मुनिराजों के ही होती है; किन्तु विक्रिया कर्मभूमि अथवा भोगभूमि के मनुष्य व तिर्यंच, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, देव, नारकी, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक, बादर पर्याप्तक जीवों के भी संभव है। इनमें कुछ के पृथक् विक्रिया और कुछ के अपृथक् विक्रिया होती है।

वैक्रियक शरीर – यह शरीर माँस, मज्जा आदि सप्त धातुओं से रहित होता है। जिनका उपपाद जन्म होता है, ऐसे देव और नारकियों के नियम से वैक्रियक शरीर होता है। **देवनारकाणामुपपादः।** (तत्त्वार्थसूत्र 2/34) **औपपादिकंवैक्रियिकम्।** (तत्त्वार्थसूत्र 2/46)

नारकियों के वैक्रियक शरीर की अपेक्षा देवों के शरीर में यह विशेषता होती है कि देवों का शरीर अणिमा, महिमा आदि आठ गुणों से संयुक्त होता है। तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय में कहा गया है कि **लब्धिप्रत्ययं च।** (तत्त्वार्थसूत्र 2/47) अर्थात् इस शरीर को मनुष्य गति के जीव विशेष तप करके प्राप्त कर सकते हैं।

विक्रिया ऋद्धि मनुष्य गति के जीवों में भी सिर्फ मुनिराजों के ही होती है। जबकि विक्रियक शरीर सिर्फ देवों और नारकियों के ही होता है। 'विक्रिया' चारों गतियों के जीवों द्वारा संभव है। वैक्रियिक समुद्घात सर्व जीवों में जहाँ आत्मप्रदेश मूल शरीर को छोड़े बिना बाहर निकले वहाँ संभव है। ●

4. मारणांतिक समुद्घात

मरण समय से एक अंतर्मुहूर्त पहले जिन जीवों को यह जानने की अत्यंत तीव्र उत्कण्ठा हो कि मरकर मेरा जन्म कहाँ होगा? – ऐसे जीवों को सहज उनकी योग्यता से मारणान्तिक समुद्धात होता है। इस समुद्धात के काल में मरण सन्मुख जीव के आत्मा के प्रदेश वर्तमान शरीर को न छोड़कर ऋजुगति अथवा विग्रह गति द्वारा जिस क्षेत्र में उत्पन्न होना है, उस क्षेत्र को जाकर स्पर्श करते हैं– यही मारणान्तिक समुद्धात है। इसका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इस समुद्धात के पश्चात् नियम से अंतर्मुहूर्त काल में मरण हो जाता है।

मारणांतिक समुद्घात – औपक्रमिकानुपक्रमायुः क्षयाविर्भूति–मरणान्तप्रयोजनो मारणान्तिक समुद्घातः। अर्थात् उदीरणा या कालक्रम से होने वाले मरण के निमित्त से मारणान्तिक समुद्घात होता है। (रा. वा. 1/20/77/15)

अपने वर्तमान शरीर को नहीं छोड़कर ऋजुगति द्वारा अथवा विग्रहगति द्वारा आगे जिसमें उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्र तक जाकर शरीर से तिगुणे विस्तार से अथवा अन्य प्रकार से अन्तर्मुहूर्त तक रहने का नाम मारणान्तिक समुद्घात है। (ध. 4/1,3,2/26/10)

आयाम की अपेक्षा अपने–अपने रहने के प्रदेश से लेकर उत्पन्न होने के क्षेत्र तक तथा बाहल्य से एक प्रदेश से लेकर उत्कृष्ट शरीर से तिगुणे बाहल्यरूप (जीवप्रदेशों के) काण्ड, एक खम्भ स्थित तोरण, हल व गोमूत्र के आकार से अंतर्मुहूर्त तक रहने को मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं। (ध. 7/2,6,1/299/11)

मरणान्तसमये मूलशरीरमपरित्यज्य यत्र कुत्र चिद्बद्धमायुस्तत्प्रदेशं स्फुटितुमात्मप्रदेशानां बहिर्गमनमिति मारणान्तिक समुद्घातः। अर्थात् मृत्यु के समय, मूल शरीर को छोड़े बिना जब इस आत्मा ने कहीं का आगामी

आयुष्य बांधा हो उस प्रदेश को स्पर्श करने के लिए आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना उसे मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं। (द्र. स. 1/31/6)

यह मारणान्तिक समुद्घात उन्हीं जीवों के सम्भव है, जिन्होंने आगामी भव संबंधी आयु का बंध कर लिया हो।

जिस जीव को तीव्र विकल्प चलता हो कि मैं मरण के पश्चात् कहाँ जाऊँगा? जिस प्रकार निवास स्थान बदलने से पूर्व नए घर को पहले एक बार देखकर आते हैं, उसी प्रकार यह आत्मा नवीन पर्याय की उत्पत्ति के पूर्व मरकर जहाँ जन्म लेना है, उस स्थान का स्पर्श करके आता है।

इस स्थिति में आत्मा के प्रदेश खिंच जाते हैं। जिस आकार का आत्मा है उसी आकार रूप आत्मा के प्रदेश विस्तृत हो जाते हैं और जिस स्थान पर जन्म लेना है उस स्थान तक आत्म प्रदेश पहुँचकर उस क्षेत्र को स्पर्श कर पुन: वापस लौटकर आ जाते हैं, इसके पश्चात् नियम से उस जीव का अन्तर्मुहूर्त में मरण हो जाता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया का नाम ही मारणांतिक समुद्घात है।

मारणांतिक समुद्घात नियम से उसी क्षेत्र की दिशा के अभिमुख होता है, जहाँ उत्पन्न होना है, शेष समुद्घात सभी दिशाओं में प्रतिबद्ध होते हैं।

मारणांतिक समुद्घात में आत्मप्रदेश उसी दिशा में निकलते हैं जहाँ मरकर जीव को उत्पन्न होना है। मारणांतिक समुद्घात के समय आत्मा के प्रदेश आकाश की श्रेणी के अनुसार एक ही दिशा में गमन करते हैं तथा 90 डिग्री पर मोड़ भी ले सकते हैं। इसे और आहारक को छोड़कर शेष पाँच समुद्घात छहों दिशाओं में होते हैं; क्योंकि वेदना आदि के वश से बाहर निकले हुए आत्मप्रदेश श्रेणी के अनुसार ऊपर, नीचे, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इन छहों दिशाओं में होते हैं ।

मारणांतिक समुद्घात सभी जीवों के संभव नहीं है। चूँकि यह मरण के पूर्व की प्रक्रिया है, अतः जिनके मरण नहीं होता, उनके मारणांतिक समुद्घात भी नहीं हो सकता। गुणस्थानों की अपेक्षा देखा जाये तो जिन गुणस्थानों में मरण नहीं है, वहाँ मारणांतिक समुद्घात भी नहीं है। जैसे तीसरे, क्षपक श्रेणी के आठवें, नौवें, दशवें तथा बारहवें एवं उपशम श्रेणी के आठवें गुणस्थान में तथा तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में मरण नहीं होता, अतः वहाँ मारणांतिक समुद्घात भी नियम से नहीं होता। जिनके मरण संभव है, वहाँ भी मारणांतिक समुद्घात हो ही हो यह अनिवार्य नहीं है ।

कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि मारणांतिक समुद्घात तो कोई विशेष चीज है; इसलिए यह त्यागी, तपस्वी, धर्मात्माओं के होता होगा; पर ऐसा नहीं है। विकलत्रय तथा एकेन्द्रिय जीवों के भी मारणांतिक समुद्घात संभव है। यह सभी के हो सकता है, यह बहुत सामान्य-सी बात है।

शंका : मारणान्तिक समुद्घात करने वाले जीव के आत्म प्रदेश कितने समय में पुनः मूल शरीर में लौटकर आ जाते हैं ?

समाधान : मारणान्तिक समुद्घात का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अर्थात् असंख्यात समय बताया गया है; किन्तु यह अनिवार्य नहीं है कि इस समुद्घात के होने पर आत्मप्रदेश पुनः मूल शरीर में लौटें। उत्पत्ति स्थान को स्पर्श कर पुनः आत्मप्रदेशों के लौटने से पूर्व भी मरण हो सकता है। यदि आत्म प्रदेशों के मूल शरीर में वापस लौटने के पहले ही मरण हो जाये तो मूल शरीर में शेष बचे हुए प्रदेश भी उत्पत्ति स्थल पर पहुँच जाते हैं। इस समुद्घात प्रक्रिया के दौरान आत्म प्रदेश मूल शरीर से उत्पत्ति स्थान तक फैले हुए रहते हैं।

मारणांतिक समुद्घात के समय आत्मा के प्रदेश आकाश की श्रेणी के अनुसार एक ही दिशा में गमन करते हैं तथा 90 डिग्री पर मोड़ भी ले सकते हैं।

शंका : जिस जीव के आत्मप्रदेश अगली पर्याय में जन्म के स्थान को स्पर्श करके आये हैं तो क्या वह जीव यह बता सकता है कि उसे अगले भव में कहाँ जाना है?

समाधान : शायद उसकी ऐसी परिस्थिति नहीं होती है कि वह बता सके कि मैं वहाँ उत्पन्न होने वाला हूँ; क्योंकि वह अंतर्मुहूर्त के भीतर ही मरण को प्राप्त करने वाला है और यदि कोई हीन पर्याय में जन्म लेने वाला हो तो वह क्यों बताएगा और ऐसा भी हो सकता है कि उसे ज्ञान तो हुआ, पर उसे समझ में ही नहीं आया हो कि कहाँ जाना है?

तत्समय की ऐसी ही योग्यता होती है कि वे आत्मप्रदेश निकलकर उस स्थान को छूकर वापस आ जाते हैं।

शंका : यह मारणांतिक समुद्धात किस कर्म प्रकृति के उदय से होता है?

समाधान : इसमें कोई विशिष्ट कर्म प्रकृति कार्य नहीं करती, यह तो सहज प्रक्रिया है। यदि गहराई से विचार करें तो आत्मा का क्षेत्र से क्षेत्रांतर गमन अपनी योग्यता से होता है और इसमें आत्मा की स्वयं की क्रियावती शक्ति कार्य करती है।

एक भव से दूसरे भव में गमन करने के लिए तो गत्यानुपूर्वी कर्म का उदय बताया गया है। परभव में गमन करते समय विग्रह गति में भी कार्मण काययोग होता है।

तत्त्वार्थ सूत्र के द्वितीय अध्याय में कहा है कि –

विग्रहगतौ कर्मयोगः ।।25।।

अर्थात् कार्मण कर्मयोग के निमित्त से ही जीव परभव में गमन करता है। यहाँ मारणांतिक समुद्धात में यह बात विशेष है कि जिस जगह पर जन्म लेना है आत्म प्रदेशों का गमन उसी दिशा में होता है यह स्थिति अन्य समुद्धातों में नहीं बनती है।

प्रश्न : मरण के बाद यह जीव एक स्थान से दूसरे स्थान पर कैसे पहुँच जाता है ? क्या कोई यमराज ले जाता है ?

उत्तर : इस जीव को देह छूटने के उपरान्त एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का कार्य करने वाला कोई यमराज नहीं है। यह जीव स्वयं अपनी क्रियावती शक्ति से एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन करता है। इसमें कार्मण काय योग निमित्त बनता है। ज्ञानावरणादि कर्मों के समूह को कार्मण काय कहते हैं। इस कार्मण शरीर के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में जो हलन-चलन अथवा कम्पन होता है, उसे कार्मण काय योग कहते हैं।

इसप्रकार एक गति से दूसरी गति में यह जीव कार्मण काय योग के निमित्त से स्वयं की क्रियावती शक्ति द्वारा पहुँच जाता है। ●

प्यासों को पानी पिलाकर उनका मात्र दो घण्टे का दुःख दूर किया जा सकता है, भूखों को भोजन देकर मात्र आठ घण्टे की भूख मिटाई जा सकती है, बीमारों को औषधिदान देकर किसी बीमारी विशेष से चार-छः माह को राहत दिलाई जा सकती है, वस्त्र विहीन दरिद्रियों को वस्त्रों का दान देकर उसकी क्षणिक लाज बचाई जा सकती है।

आहारदान, ज्ञानदान, औषधिदान और अभयदान के नाम पर क्षणिक दुःख दूर किया जा सकता है; परन्तु ऐसा करने से अनन्त जीवों के अनन्तकाल से हो रहे अनन्त दुख दूर नहीं किए जा सकते।

तत्त्वज्ञान का दान देना ही सर्वोत्तम उपकार है। तीर्थंकर आदि भी ऐसा ही उपकार करते हैं। अतः क्यों न अपने शेष जीवन को तत्त्वाभ्यास एवं तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में ही सम्पूर्णतया समर्पित कर दिया जाय? और इसके लिए जिन साधनों की आवश्यकता हो; उन सभी साधनों को जुटाने में अपने अर्जित धन का भी सदुपयोग क्यों न किया जाये?

5. तैजस समुद्‌घात

जीवों के अनुग्रह और विनाश में समर्थ तैजस शरीर की रचना के लिये जो समुद्धात होता है, उसे तैजस समुद्धात कहते हैं। दूसरे प्रकार से कहें तो तैजस शरीर रूप पुतले के साथ आत्म प्रदेशों का मूल शरीर से बाहर निकलना तैजस समुद्धात कहलाता है।

शंका : तैजस शरीर और तैजस समुद्धात में क्या अन्तर है?

समाधान : तैजस शरीर की संरचना तैजस वर्गणाओं से होती है, जो कि पौद्गलिक हैं; जबकि समुद्धात आत्मप्रदेशों के बाहर निकलने रूप होने से चेतन की पर्याय है। सभी तैजस शरीरों में समुद्धात की स्थिति नहीं बनती। तैजस शरीर दो प्रकार का होता है –

(1) अनिःसरण तैजस शरीर

(2) निःसरण तैजस शरीर

इन दोनों प्रकारों में से अनिःसरण तैजस शरीर का सद्भाव सर्व संसारी जीवों के होता है। जिसे आचार्य उमास्वामी ने **'अनादि सम्बन्धे च' (त.सू. 2/41)** सूत्र के माध्यम से बताया है। यह औदारिक, वैक्रियिक तथा आहारक शरीर में कान्ति/तेज प्रदान करने का कार्य करता है, यह पृथक् रूप से निकलता नहीं है, अतः इसे अनिःसरण तैजस कहते हैं।

निःसरण तैजस शरीर की रचना भावलिंगी संतों को छठे गुणस्थान की भूमिका में तैजस ऋद्धि के प्रयोग के काल में होती है। इस समय औदारिक शरीर से एक पृथक् शरीर पुतले के रूप में बाहर निकलता है, उसे निःसरण तैजस शरीर कहते हैं।

अनिःसरण और निःसरण दोनों तैजस शरीरों में से समुद्धात की स्थिति मात्र निःसरण तैजस शरीर में ही बनती है। इसप्रकार यह कहा जा

सकता है कि तैजस शरीर का संबंध तो सर्व संसारी जीवों को सभी क्षेत्रों एवं सर्व कालों में होता है; जबकि यह समुद्घात सिर्फ मनुष्य गति में ही, उसमें भी भावलिंगी संतों को तथा उसमें भी तैजस ऋद्धिधारी मुनिराजों को तथा उसमें भी मात्र ऋद्धि के प्रयोगकाल में अंतर्मुहूर्त मात्र के लिये ही होता है।

तैजस शरीर तप द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है।

लब्धिप्रत्ययं च। (तत्त्वार्थसूत्र 2/47)

तैजसमपि। (तत्त्वार्थसूत्र 2/48)

तैजस शरीर लब्धि से भी उत्पन्न होता है।

तेज और प्रभा रूप गुण से युक्त है इसलिए तैजस है। (ध. 14/5,6/सू. 240/327)

जो दीप्ति का कारण है या तेज में उत्पन्न होता है उसे तैजस शरीर कहते हैं। (स. सि. 2/36) (रा.वा. /2/36/8/146/11/)

शरीर स्कंध के पद्मराग मणि के समान वर्ण का नाम तेज है तथा शरीर से निकली हुई रश्मि कला का नाम प्रभा है। तेज और प्रभागुण से युक्त तैजस शरीर है यह उपर्युक्त कथन का तात्पर्य है।

शंख के समान शुभ्र तैजस होता है। (रा. वा. 2/46/8/153/14)

तैजस शरीर के भेद

तैजस शरीर निःसरणात्मक और अनिःसरणात्मक इस तरह दो प्रकार का है। (ध.14/5,6,40/328/1)

उसमें जो नि:सरणात्मक तैजस शरीर है वह दो प्रकार का है 1.शुभ और 2.अशुभ (ध. 4/1.3.2/27/7)

तैजस शरीर प्रशस्त और अप्रशस्तके भेद से दो प्रकार का है। (ध. 7/2,6,1/300/4)

*** अनिःसरणात्मक तैजस :-**

औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर में रौनक लाने वाला अनिःसरणात्मक तैजस है।(रा.वा. 2/46/8/153/15)

जो अनि:सरणात्मक तैजस शरीर है वह भुक्त अन्नपान का पाचक होकर भीतर स्थित रहता है। (ध. 14/5, 6,240/328/8)

राजवार्तिक ग्रंथ में (1/20/12/77/16) आचार्य अकलंकदेव लिखते हैं-

जीवानुग्रहोपघातप्रवणतेजः शरीर निर्वर्तनार्थस्तेजस्समुद्घातः।

अर्थात् जीवों के अनुग्रह और विनाश में समर्थ तैजस शरीर- की रचना के लिए तैजस समुद्घात होता है ।

तैजस शरीर के विसर्पण का नाम तैजस शरीर समुद्घात है। (ध.4/1,3,2/27/7)

निःसरण तैजस शरीर शुभ और अशुभ के भेद से दो प्रकार का है। ये दोनों ऋद्धि के प्रभाव से आत्म प्रदेशों सहित शरीर से निकलने वाले पुतले होते हैं। तैजस ऋद्धिधारी भावलिंगी संतों को छठे गुणस्थान के काल में शुभ तैजस शरीर दाहिने कंधे (सीधे हाथ की ओर) से तथा अशुभ तैजस शरीर बायें कंधे (उल्टे हाथ की ओर) से निकलता है। इनके निकलने के भिन्न-भिन्न प्रयोजन बताये गये हैं।

शुभ तैजस

शुभ तैजस शरीर का प्रयोजन व स्वरूप :-

किसी भी क्षेत्र में अकाल, महामारी, डेंगू, प्लेग, हैजा आदि की भयानक परिस्थिति बने, जिससे वहाँ रहने वाले मनुष्यों का जीवन दुर्लभ हो जाये। तब लोगों को दुःखी देखकर मुनिराज के अत्यन्त करुणा भाव होने पर दाहिने कंधे से एक तैजस पुतला निकलता है, वह 12 योजन

(48 कोस) तक जीवों का दुःख मिटाकर पुनः मूल शरीर में प्रवेश करता है। यह निःसरण शुभ तैजस का कार्य है।

उग्र चारित्रवान् तथा दयापूर्वक अनुकम्पा से आपूरित संयत के इच्छा होने पर दाहिने कंधे से हंस और शंख के वर्णवाला शरीर निकलकर मारी, दिरमर, व्याधि, वेदना, दुर्भिक्ष और उपसर्ग आदि के प्रशमन द्वारा सब जीवों और संयत के जो सुख उत्पन्न करता है वह शुभ तैजस कहलाता है। (ध./14/5,6,240/328/3)

लोकं व्याधिदुर्भिक्षादिपीडितमवलोक्य समुत्पन्नकृपस्य परमसंयम निधानस्य महर्षेर्मूलशरीरमपरित्यज्य शुभ्राकृतिः प्रागुक्तदेहप्रमाणः पुरुषो दक्षिणप्रदक्षिणेन व्याधिदुर्भिक्षादिकं स्फोटयित्वा पुनरपि स्वस्थाने प्रविशति, असौ शुभरूपस्तेजः समुदघातः। (द्रव्यसंग्रह टीका /10/32)

अर्थ :– जगत को रोग दुर्भिक्ष आदि से दुखित देखकर जिसको दया उत्पन्न हुई ऐसे परम संयम निधान महाऋषि के मूल शरीर को न त्यागकर पूर्वोक्त देह के प्रमाण, सौम्य आकृति का धारक पुरुष दायें कंधे से निकलकर दक्षिण प्रदक्षिणा देकर रोग, दुर्भिक्षादि को दूर कर फिर अपने स्थान में आकर प्रवेश करे वह शुभ तैजस समुद्घात है।

यह पुतला जीवों के उपकार के लिए निकलता है, दुर्भिक्ष, महामारी, प्लेग आदि के समय जहाँ लाखों लोग मर रहे हों उस समय यह पुतला निकलता है। तब महामारी आदि की दशा में कोई ऋद्धिधारी मुनिराज हों तो उन्हें ऐसा विकल्प आता है कि ये सब जो जीव मर रहे हैं, उनकी रक्षा करनी चााहिए। तो करुणा बुद्धि से छठे गुणस्थान के काल में वह पुतला निकलकर चला जाता है। पूरा चक्कर लगाकर आता है तब सारी बीमारियाँ दूर हो जाती हैं।

अशुभ तैजस

यतेरुग्रचारित्रस्यातिक्रुद्धस्य जीवप्रदेशसंयुक्तं बहिर्निष्क्रम्य दाह्यं परिवृत्यावतिष्ठमानं निष्पावहरितफलपरिपूर्णां स्थालीमग्निरिव पचति, पक्त्वा च निवर्तते, अथ चिरमवतिष्ठते अग्निसाद् दाह्योऽर्थो भवति, तदेतन्निःसरणात्मकम् । (रा. वा./2/49/8/153/16)

अर्थ :– नि:सरणात्मक तैजस उग्रचारित्रवाले अतिक्रोधी यति के शरीर से निकलकर जिस पर क्रोध है उसे घेरकर ठहरता है और उसे शाक की तरह पका देता है, फिर वापिस होकर यति के शरीर में ही समा जाता है। यदि अधिक देर ठहर जाये तो उसे भस्मसात् कर देता है।

क्रोध को प्राप्त हुए संयत के वाम कंधे से बारह योजन लम्बा, नौ योजन चौड़ा और सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण मोटा तथा जपाकुसुम के रंग वाला शरीर निकलकर अपने क्षेत्र के भीतर स्थित जीवों का विनाश करके पुन: प्रवेश करते हुए जो उसी संयत को व्याप्त करता है वह अशुभ तैजस शरीर है। (ध. 14/5, 6, 241/328/5) (ध. /4/1, 3, 2/28/1)

✻ अपने मन को अनिष्ट उत्पन्न करने वाले किसी कारण को देखकर क्रोधी संयम के निधान महामुनि के बायें कन्धे से सिंदूर के ढेर जैसी कान्तिवाला; बारह योजन लम्बा सूच्यंगुल के संख्यात भाग प्रमाण मूल विस्तार और नौ योजन के अग्र विस्तार वाला; काहल (बिलाव) के आकार का धारक पुरुषरूप पुतला निकल करके बायी प्रदक्षिणा देकर मुनि जिस पर क्रोधी हो उस पदार्थ को भस्म करके और उसी मुनि के साथ आप भी भस्म हो जावे। जैसे– द्वैपायन मुनि। सो अशुभतैजस समुद्घात है। – द्रव्यसंग्रह टीका /10/32/5

अशुभ तैजस शरीर का प्रयोजन व स्वरूप :–

किसी क्षेत्र में मुनिराज को अत्यन्त क्रोध आने पर ऋद्धि के प्रभाव

से उनके बायें कंधे से सिंदूर के समान लाल अग्निरूप कान्तिवाला बिलाव के आकार का एक शरीर निकलता है, जो 12 योजन तक के सब जीवों के शरीर को तथा अन्य पुद्गलों को जलाकर भस्म करके मूल शरीर में प्रवेश करके उन मुनिराज को भी भस्म कर देता है। यह निःसरण अशुभ तैजस का कार्य है।

ये शुभ और अशुभ दोनों तैजस शरीर आत्म प्रदेशों से युक्त होते हैं। मूल शरीर से तैजस पुतले तक आत्मा के प्रदेश अखण्ड रूप से जुड़े रहते हैं। इस परिस्थिति में मूल शरीर को न छोड़ते हुये भी आत्मप्रदेश शरीर से बाहर निकलते हैं, इसलिए इसे तैजस समुद्घात कहते हैं। इसका जघन्य आकार शरीर प्रमाण एवं उत्कृष्ट आकार केवली समुद्घात के बराबर होता है। यह पुतला जहाँ तक जाएगा, घूमेगा उसमें सभी अवस्थाओं में आत्मा के प्रदेश होंगे वह तैजस समुद्घात है।

विषय	अप्रशस्त	प्रशस्त
वर्ण	जपाकुसुमवत्	हंसवत् धवल
शक्ति	भूमि व पर्वत को जलाने में समर्थ	रोगमारी आदि के प्रशमन में समर्थ
उत्पत्ति स्थान	बायां कंधा	दायां कंधा
विसर्पण	इच्छित क्षेत्र प्रमाण अथवा 12-9 योजन सूच्यंगुल के संख्यात् भाग प्रमाण	अप्रशस्तवत्
निमित्त	रोष	प्राणियों के प्रति अनुकंपा

मोहनजोदड़ो आदि के समय, सिंधु घाटी सभ्यता आदि में इसी तरह का कुछ हुआ होगा, वहाँ आज भी खुदाई में कोई चलता हुआ, कोई लेटा हुआ, कोई सीढ़ियां चढ़ता हुआ आदि कंकाल मिले हैं। मकान, दुकान, सारा का सारा नगर मिला है। सैकड़ों किलोमीटर के नगर मिले हैं वहाँ भी ऐसी ही कोई महामारी आदि हुई होगी।

तैजस समुद्घात का स्वामित्व :–

परमसंयमनिधानस्य द्रव्यसंग्रह टीका /10/32/5

अर्थात् परमसंयम के निधान महामुनि के तैजस समुद्घात होता है।

बिना महाव्रतों के तैजस समुद्घात् नहीं होता। (ध. 7/2,6. 1/ 299/7)

शंका : सुना है तैजस शरीर का संबंध अनादि काल से है। तो क्या मरण होने पर भी वह नहीं छूटता ?

समाधान : हाँ ! अनिःसरण नामक सामान्य तैजस शरीर का संबंध सर्व संसारी जीवों के साथ अनादि काल से है। यह औदारिक आदि शरीरों में तेज प्रदान करने का कार्य करता है। यह जीवों के द्वारा ग्रहण किये गये भोजन/अन्न–पान आदि का पाचक भी होता है।

यह शरीर अनादि तो है, पर अनंत काल तक नहीं समझना चाहिए, क्योंकि अनन्त मानने पर मोक्ष नहीं हो सकेगा और यदि इसे अनादि नहीं मानेंगे तो संसार अवस्था भी सिद्ध नहीं हो पायेगी। यह समस्त चर्चा शरीरों की है और ज्ञायक आत्मा इनसे अत्यन्त भिन्न है। अपने स्वरूप को इन शरीरों से भिन्न स्वीकार कर उसके अनुभव द्वारा इन शरीरों से सदा के लिये मुक्त हो सकते हैं। ●

जब होनहार भली है, तब मार्ग में आने वाली विपत्तियाँ स्वतः सम्पत्तियों में बदल जाती हैं।

6. आहारक समुद्घात

आहारक समुद्घात नियम से भावलिंगी मुनिराजों के ही होता है। तप के प्रभाव से छठे-सातवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज के अन्तरंग में आहारक ऋद्धि सहज प्रकट हो जाती है। जब आहारक ऋद्धिधारी मुनिराज को तीर्थवंदना अथवा सूक्ष्म शंका के समाधान का विकल्प उत्पन्न होता है; तब सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान करने के लिये अथवा वन्दना के विकल्प की पूर्ति में असंयम को दूर करने के लिये वे जिस शरीर की रचना करते हैं, उसे आहारक शरीर है। मुनिराज औदारिक शरीर सहित अपने स्थान पर बैठे रहते हैं और यह आहारक शरीर रूप पुतला औदारिक देह से निकलकर विकल्प की पूर्ति के लिये केवली, श्रुतकेवली के समागम में पहुँच जाता है। शंका का समाधान कर पुनः लौटकर मूल शरीर में प्रवेश करता है। औदारिक शरीर से निकले हुए इस पुतले में आत्मा के प्रदेश साथ-साथ चलते हैं। इसप्रकार आत्मप्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना ही आहारक समुद्घात है।

आहारक ऋद्धि का प्रयोग अथवा आहारक शरीर की रचना एवं आहारक समुद्घात नियम से प्रमत्त संयत नामक छठे गुणस्थान में ही होता है।

शंका : क्या आहारक शरीर हमारे शरीर जैसा ही होता है ? इसमें क्या विशेषता होती है?

समाधान : नहीं ! हमारा मूल शरीर तो औदारिक है, जो कि सप्त धातुओं से निर्मित है, जबकि आहारक शरीर ऋद्धि के प्रभाव से निर्मित विशेष शरीर है। यह शरीर एक हाथ प्रमाण वाला, सर्वांग सुन्दर, समचतुरस्र संस्थान वाला, हंस के समान सफेद, सप्त धातु रहित, पुरुषाकार होता है। यह शरीर मुनिराज के मस्तक से निकलता है और एक ही दिशा में गमन करता है। आकाश प्रदेशों की श्रेणी के अनुसार गमन करते हुये सिर्फ 90 डिग्री पर ही घूमता है। इसका काल अंतर्मुहूर्त है।

यह शरीर व्याघात रहित है अर्थात् किसी से टकराता नहीं है तथा किसी को बाधा भी नहीं पहुँचाता। विष, अग्नि, शस्त्र आदि की बाधा से रहित, बज्र, शिला, जल, पर्वत आदि सभी क्षेत्रों में गमन करने में समर्थ होता है।

आहारक शरीर का लक्षण:–

छठे गुणस्थानवर्ती मुनि अपने को सन्देह होने पर जिस शरीर के द्वारा केवली के पास जाकर सूक्ष्म पदार्थों का आहरण करता है, उसे आहारक शरीर कहते हैं । (ध 1/1,1, 56/164/296)

जिसके द्वारा आत्मा सूक्ष्म पदार्थों का ग्रहण करता है, अर्थात् आत्मसात करता है, उसको आहारक शरीर कहते हैं। (ध. 1,1,56/163/294)

निपुण, स्निग्ध और सूक्ष्म आहारक द्रव्यों में सूक्ष्मतर है, इसलिए आहारक है। ।239। निपुण अर्थात् अण्हा और मृदु, स्निग्ध अर्थात् धवल सुगन्ध, सुष्ठु और सुंदर तथा अप्रतिहत का नाम सूक्ष्म है। आहार द्रव्यों में से आहारक शरीर को उत्पन्न करने के लिए निपुणतर और स्निग्धतर स्कंध को आहरण करता है अर्थात् ग्रहण करता है, इसलिए आहारक कहलाता है। (ध. 14/5, 6, 240/327/4)

न तो आहारक शरीर किसी का व्याघात करता है, न किसी से व्याघातित होता है, इसलिए अव्याघाती है। सूक्ष्म पदार्थ के निर्णय के लिए आहारक शरीर होता है। (रा. वा. 2/49/3/152/29) (गो. जी. 238)

आहारक शरीर का वर्ण धवल ही होता है।

एक हाथ ऊँचा, हंस के समान धवल वर्ण वाला तथा सर्वांग सुंदर होता है। (ध. 4/1,3,2/28/6) (गो.जी. 237)

मस्तक से उत्पन्न होता है।

आहारक शरीर उत्तमांग अर्थात् मस्तक से उत्पन्न होने वाला है। (ध. 4/1, 3,2/28/7) (गो. जी. 237)

कई लाख योजन तक अप्रतिहत गमन करने में समर्थ

क्षण मात्र में कई लाख योजन गमन करने में समर्थ, ऐसा अप्रतिहत गमन वाला आहारक शरीर होता है।

(ध.4/1, 3,2/28/6)

आहारक शरीर में निगोद राशि नहीं होती।

आहारक शरीरी, प्रमत्तसंयत् ये जीव प्रत्येक शरीर वाले होते हैं। क्योंकि इनका निगोद जीवों के साथ सम्बन्ध नहीं होता।

(ध. 14/5.6,91/81/8)

आहारक शरीर की स्थिति

बहुरि जाकी (आहारक शरीर की) जघन्य वा उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण है। (गो.जी./238)

7. आहारक शरीर का स्वामित्व

जिस समय मुनि आहारक शरीर की रचना करते हैं उस समय प्रमत्तसंयत ही होता है। (रा. वा. 2/49/6/153/6)

आहारक शरीर का कारण व प्रयोजन :– कदाचित् ऋद्धि का सद्भाव जानने के लिए, कदाचित् सूक्ष्मपदार्थों का निर्णय करने के लिए, संयम के परिपालन के अर्थ, भरत, ऐरावत क्षेत्र में केवली का अभाव होने से, तत्त्वों में संशय को दूर करने के लिए महाविदेह क्षेत्र में शरीर से जाना तो शक्य नहीं है और इससे मुझे असंयम भी बहुत होगा, इसलिए विद्वान् मुनि आहारक शरीर की रचना करते हैं। (रा.वा. 2/49/4/153/1) (गो.जी./मू. 235-236,237)

जो आज्ञा की अर्थात् श्रुतज्ञान की कनिष्ठता अर्थात् हीनता के होने

पर और असंयम की बहुलता होने पर जिसने अपना स्वरूप प्राप्त किया है ऐसा आहारक शरीर है। (ध. 4/1, 3,2/28/7)

आहारक लब्धि 14 पूर्वों का ज्ञान होने पर ही होती है। 14 पूर्वों का ज्ञान मनुष्य पर्याय में ही होता है। मनुष्य पर्याय के अलावा अन्यत्र आहारक समुद्घात संभव नहीं है।

असंयम बहुलता, आज्ञा कनिष्ठता और अपने क्षेत्र में केवली विरह इस प्रकार इन तीन कारणों से साधु आहारक शरीर को प्राप्त होते हैं। जल, स्थल और आकाश के एक साथ दुष्परिहार्य सूक्ष्म जीवों से आपूरित होने पर असंयम बहुलता होती है। उसका परिहार करने के लिए साधु आहारक शरीर को प्राप्त होते हैं। इसलिए आहारक शरीर का प्राप्त करना असंयम बहुलता निमित्तक कहा जाता है। आज्ञा उसकी कनिष्ठता अर्थात् उसका अपने क्षेत्र में थोड़ा होना आज्ञा कनिष्ठता कहलाती है। यह द्वितीय कारण है।

आगम को छोड़कर द्रव्य और पर्यायों के अन्य प्रमाणों के विषय न होने पर अपने संदेह को दूर करने के लिए परक्षेत्र में श्रुतकेवली और केवली के पादमूल में जाता हूँ, ऐसा विचार कर आहारक शरीर रूप से परिणमन करके गिरि, नदी, सागर, मेरुपर्वत, कुलाचल और पाताल में केवली और श्रुतकेवली के पास जाकर तथा विनय से पूछकर तथा संदेह से रहित होकर लौट आते हैं, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

परक्षेत्र में महामुनियों के केवलज्ञान की उत्पत्ति और परिनिर्वाणगमन तथा तीर्थंकरों के परिनिष्क्रमण कल्याणक यह तीसरा कारण है। विक्रिया ऋद्धि से रहित और आहारक लब्धि से युक्त साधु अवधिज्ञान से या श्रुतज्ञान से देवों के आगमन के विचार से केवलज्ञान की उत्पत्ति जानकर वंदना, भक्ति से जाता हूँ। ऐसा विचारकर आहारक शरीर रूप से परिणमन कर उस प्रदेश में आकर उन केवलियों की और दूसरे जिनों की व जिनालयों की वन्दना करके वापिस आते हैं। (ध.14/5, 6,239/326/3)

1. आहारक ऋद्धि का लक्षण

संयम विशेष से उत्पन्न हुई आहारक शरीर के उत्पादन रूप शक्ति को आहारक ऋद्धि कहते हैं।

2. आहारक समुद्धात का लक्षण

अल्प हिंसा और सूक्ष्मार्थ परिज्ञान आदि प्रयोजनों के लिए आहारक शरीर की रचना के निमित्त आहारक समुद्धात होता है। आहारक शरीर की रचना के समय श्रेणी गति होने के कारण असंख्य आत्मप्रदेश निकल कर एक अरत्निप्रमाण (एक हाथ) आहारक शरीर को बनाते हैं।

हस्त प्रमाण सर्वांग सुन्दर, समचतुरस्र संस्थान से युक्त, हंस के समान धवल, रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र इन सात धातुओं से रहित, विष अग्नि एवं शस्त्रादि समस्त बाधाओं से मुक्त, बज्र, शिला स्तम्भ, जल व पर्वतों में से गमन करने में दक्ष तथा मस्तक से उत्पन्न हुए शरीर से तीर्थंकर के पादमूल में जाने का नाम आहारक समुद्धात है। (ध. 7/2, 6,1 /300/6)

समुत्पन्नपदार्थ भ्रान्तेः परमर्द्धिसंपन्नस्य महर्षेमूलशरीरमपरित्यज्य शुद्ध स्फटिकाकृतिरेक हस्तप्रमाणः पुरुषो मस्तकमध्यान्निर्गत्य यत्र कुत्रचिदन्तर्मुहूर्तमध्ये केवलज्ञानिनं पश्यति तद्दर्शनाश्च स्वाश्रयस्य मुनेः पदपदार्थनिश्चयं समुत्पाद्य पुनः स्वस्थाने प्रविशति, असावाहार समुद्धातः। (द्रव्यसंग्रह टीका 10/32)

अर्थ – पद और पदार्थ में जिसको कुछ संशय उत्पन्न हुआ है ऐसे परम ऋद्धि वाले महर्षि के मूल शरीर को छोड़े बिना शुद्ध स्फटिक जैसी आकृति वाला एक हाथ का पुरूषाकार पुतला मस्तक के मध्य में से निकलकर अन्तर्मुहूर्त में जहाँ कहीं केवलज्ञानी को देखता है वहाँ उनके दर्शन से अपने आश्रयभूत मुनि को पद और पदार्थ का निश्चय उत्पन्न करके फिर अपने स्थान में प्रवेश करता है उसे आहारक समुद्धात कहते हैं।

आहारक समुद्धात का स्वामित्व

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव। (तत्त्वार्थसूत्र 2/49)

आहारक शरीर शुभ, विशुद्ध,व्याघात रहित है और वह प्रमत्तसंयत के ही होता है।

प्रमत्तसंयतस्यैवाहरकं नान्यस्य।

अर्थ :– प्रमत्तसंयत के ही आहारक शरीर होता है । (रा.वा 2/49/7/153/8/)

1. जिनको ऋद्धि प्राप्त हुई है ऐसे महर्षियों के होता है।

2. मिथ्यादृष्टि जीव राशि के (आहारक समुद्धात) सम्भव नहीं, क्योंकि इसके कारणभूत गुणों का मिथ्यादृष्टि और असंयत व संयतासंयतों के अभाव है।

3. प्रमत्तसंयत में भी परिहार विशुद्धि संयत के आहारक व तैजस – समुद्धात नहीं होता।

4. प्रमत्त संयत के उपशम सम्यक्त्व के साथ आहारक समुद्धात नहीं होता है। (ध. 4/1, 3, 82/135/6) (ध./4/1, 4,135/286/11)

समुद्धात गत आत्मप्रदेशों का पुनः औदारिक शरीर में संघटन कैसे हो–

प्रश्न : – जिसकी आयु नष्ट हो गयी है ऐसे जीव की पुन: उस शरीर में उत्पत्ति नहीं हो सकती। क्योंकि, ऐसा मानने में विरोध आता है। अतः जीव का औदारिक शरीर के साथ पुनः संघटन नहीं बन सकता अर्थात् एक बार जीव प्रदेशों का आहारक शरीर के साथ सम्बन्ध हो जाने पर पुन: उन आत्मप्रदेशों का पूर्व औदारिक शरीर के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता।

उत्तर :– ऐसा नहीं है, तो भी जीव और शरीर का सम्पूर्ण रूप से वियोग ही मरण हो सकता है। उनका एकदेश रूप से वियोग मरण नहीं हो सकता, क्योंकि जिनके कंठ पर्यन्त जीव प्रदेश संकुचित हो गये हैं। ऐसे जीवों का मरण भी नहीं पाया जाता है। यदि एकदेश वियोग को भी मरण माना जावे, तो जीवित शरीर से कटकर जिसका हाथ अलग हो गया है उसके साथ व्यभिचार आयेगा । इसी प्रकार आहारक शरीर को धारण करना इसका अर्थ सम्पूर्ण रूप से पूर्व (औदारिक) शरीर का त्याग करना नहीं है, जिससे कि आहारक शरीर को धारण करने वाले का मरण माना जावे। (ध. 1/1,56/295/3)

आहारक नाम का पुतला होता है। आहारक ऋद्धिधारी छठे गुणस्थानवर्ती मुनिराज को तत्त्व के संबंध में तीव्र विकल्प होने पर अथवा तीर्थ वंदना आदि का विकल्प होने पर, चातुर्मास आदि का समय हो, जिसमें विहार नहीं हो पा रहा हो, ऐसा समय हो जिसमें शारीरिक असमर्थता हो, शंका आदि का समाधान करने वाला कोई दिखाई नहीं दे रहा हो, ऐसे समय में वह आहारक नाम का पुतला उन ऋद्धिधारी मुनिराज के मस्तक से निकलता है।

एक हाथ प्रमाण, सफेद, शुभ्र पुरुषाकार, सप्तधातु रहित, धवल, दैदीप्यमान, तेज से युक्त,अत्यंत तीव्र गति से जाकर आता है, आहारक शरीर के मार्ग में दीवार, अग्नि, पर्वत, जल, बज्रपटल कोई भी बाधा आये वह मार्ग को नहीं छोड़ता है अर्थात् उसका कोई अवरोधक नहीं है।

यह मस्तक से निकलकर नाक की सीध में जाता है और समकोण पर मुड़ता है। केवली–श्रुतकेवली के पादमूल में जाकर अंतर्मुहूर्त में ही समाधान ले आता है। तीर्थ वंदनादि करके भी अंतर्मुहूर्त में ही आ जाता है।

आहारक समुद्घात में आत्मा के प्रदेश आकाश द्रव्य के प्रदेशों की श्रेणियों के अनुसार फैलते हैं और श्रेणी अनुसार फैलने के कारण वे तिरछे

नहीं हो सकते। अतः ईशान आदि शेष दिशाओं में आत्मप्रदेश गमन नहीं करते हैं।

सुमेरू के ऊपर स्वर्गों का प्रारंभ है उनमें सबसे पहले पहला-दूसरा स्वर्ग है। यहाँ से यदि हम ऊपर जाएँ तो दक्षिण दिशा में 18 नंबर के श्रेणीबद्ध विमान में सौधर्मेन्द्र रहता है। पहले स्वर्ग के 31 पटलों में से 18 नंबर के श्रेणीबद्ध विमान में वह रहता है। यदि हम उसके विमान का हिसाब लगाएँ तो 18वाँ श्रेणीबद्ध विमान स्वयंभूरमण समुद्र के ऊपर आता है। जो मध्य लोक के अंत में है तब यदि सौधर्मेन्द्र नीचे आएगा तो श्रेणी के अनुसार ही नीचे आएगा। तो स्वर्ग से सीधा स्वयंभू रमण समुद्र के ऊपर आकर पश्चात् ढाईद्वीप में आएगा। क्योंकि देवों का बिना श्रेणी के गमन नहीं होता है।

शंका : क्या हम आहारक शरीर को देख सकते हैं?

समाधान : यद्यपि यह शरीर पौद्गलिक/मूर्तिक होता है, तथापि इसकी गति इतनी तीव्र होती है कि वह हमारी आँखों से पकड़ में नहीं आ पाता। यह शरीर एक सेकेण्ड के भीतर सैंकड़ों योजन गमन कर सकता है। यह सब पढ़कर, सुनकर हमें इस ऋद्धि की महिमा आती है, किन्तु ऋद्धिधारी मुनिराजों को इस शरीर अथवा ऋद्धि की नहीं; अपितु अपने ज्ञायक स्वभाव की ही महिमा आती है। अपने ज्ञायक के अवलम्बन से इस जैसी सैंकड़ों ऋद्धियाँ मुनिराज के जीवन में सहज ही प्रकट हो जाती हैं, किन्तु मुनिराज को ऋद्धियों की रंचमात्र भी अपेक्षा नहीं है। मोक्षमार्ग में इनका कोई स्थान नहीं है। ●

व्यक्ति अपनी खोटी भावना करके स्वयं पाप बाँध लेता है, दूसरों का बुरा करना तो किसी के हाथ में है नहीं। उसका भला-बुरा तो उसके स्वयं के पुण्य-पाप के परिणामों से होता है। यदि यह बात समझ में आ जाये तो कोई किसी का बुरा चाहेगा ही क्यों?

7. केवली समुद्घात

13 वें गुणस्थान में जिनके आयु कर्म की स्थिति कम हो और वेदनीय, नाम व गोत्र कर्म की स्थिति अधिक हो, तब इस समुद्धात की परिस्थिति बनती है। इसके द्वारा अन्य कर्मों की स्थिति आयु कर्म के बराबर हो जाती है। यह समुद्धात निम्न चार चरणों से होकर गुजरता है।

(1) दण्डाकार केवली समुद्धात :-

इसमें आत्मा के प्रदेश शरीर जितने दायरे में अथवा शरीर से तीन गुणा बाहल्य रूप होकर ऊर्ध्व एवं अधो दिशा में कुछ कम चौदह राजू लम्बाई तक फैल जाते हैं।

जिस आसन में अरहंत परमात्मा विराजमान हैं, उसी आकार में आत्मा के प्रदेश ऊर्ध्व तथा अधोलोक में बिल्कुल सीधे निकलते हैं। मानों तीनों लोकों के बराबर एक दण्डाकार रूप में उनके आत्मप्रदेश हैं, इसे दंडाकार कहते हैं। यह एक समय में होने वाला कार्य है।

(2) कपाटाकार केवली समुद्धात :-

इस समुद्धात के काल में दण्डाकार आत्मा के प्रदेश पूर्व एवं पश्चिम दिशा में वातवलय से रहित सम्पूर्ण क्षेत्र में दरवाजे की तरह खुलते हैं; अतः इसे कपाटाकार कहा गया है।

(3) प्रतराकार केवली समुद्धात :-

इस समुद्धात के काल में कपाटाकार आत्मा के प्रदेश प्रतर के समान(चौकोर) वातवलय से रहित सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाते हैं।

(4) लोकपूरण केवली समुद्धात :-

इस समुद्धात के काल में कपाटाकार आत्मा के प्रदेश 343 घनराजू प्रमाण सम्पूर्ण लोक में फैल जाते हैं अर्थात् लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर आत्मा का एक-एक प्रदेश रहता है।

इस प्रकार एक-एक समय में क्रम से एक-एक समुद्घात को प्राप्त होते हुए चौथे समय में समुद्घातगत केवली के आत्मप्रदेश लोकपूरण अवस्था को प्राप्त होते हैं, पश्चात् पाँचवें समय में पुन: प्रतराकार, छठवें समय में कपाटाकार तथा सातवें समय में दण्डाकार और अंतिम आठवें समय में सभी आत्म प्रदेश मूल शरीर का आकार ग्रहण कर लेते हैं। इसप्रकार केवली समुद्धात का काल आठ समय मात्र है।

केवली समुद्धात के ये चारों प्रकार क्रम से ही होते हैं। इनमें क्रम का उल्लंघन नहीं होता। अंतिम स्थिति में जब आत्मा के सभी प्रदेश लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश तक फैल जाते हैं, तब पुनः आत्मा के प्रदेश सिमटने लगते हैं। अर्थात् लोकपूरण से प्रतराकार तथा प्रतराकार से कपाटाकार तथा कपाटाकार से दण्डाकार होते हुये पुनः परमौदारिक शरीर तक सिमट जाते हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में कुल 8 समय लगते हैं, अतः कहा जा सकता है कि केवलीसमुद्धात का काल 8 समय मात्र है।

दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण रूप जीव प्रदेशों की अवस्था को केवलीसमुद्धात कहते हैं।

जिनके स्वल्पमात्रा में कर्मों का परिपाचन हो रहा है ऐसे वे अपने (केवली) आत्मप्रदेशों के फैलने से कर्म रज को परिशातन करने की शक्तिवाले दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्धात को करके चारों समयों के द्वारा अनन्तर के विसर्पण संकोच करके तथा शेष चार कर्मों की स्थिति को समान करके अपने पूर्व शरीर प्रमाण होकर सूक्ष्म काययोग के द्वारा सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति ध्यान को स्वीकार करते हैं। (स.सि. 9/44 /361/1)

जैसे मदिरा में फेन आकर शांत हो जाता है उसी तरह समुद्धात में देहस्थ आत्मप्रदेश बाहर निकलकर फिर शरीर में समा जाते हैं, ऐसा समुद्धात केवली करते हैं। (रा.वा. 1/20/12/77/19)

दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण के भेद से केवलीसमुद्धात चार प्रकार का है । (ध.4/,1,3,2/28/8)

केवली समुद्धात च्यारि प्रकार दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण वहाँ दण्ड दोय प्रकार एक स्थिति दण्ड, अर एक उपविष्ट दण्ड। बहुरि कपाट चारि प्रकार पूर्वाभिमुखस्थितकपाट, उत्तराभिमुखस्थितकपाट, पूर्वाभिमुखउपविष्टकपाट, उत्तराभिमुखउपविष्टकपाट। बहुरि प्रतर अर लोकपूरण एक-एक ही प्रकार है। (गो.जी./जी.प्र./544/953/14)

* जिसकी अपने विष्कंभ से कुछ अधिक तिगुनी परिधि है ऐसे पूर्व शरीर के बाहल्यरूप अथवा पूर्व शरीर से तिगुने बाहल्यरूप दण्डाकार से केवली के जीव प्रदेशों का कुछ कम चौदह राजू उत्सेधरूप फैलने का नाम दण्ड समुद्घात है । दण्ड समुद्धात में बताये गये बाहल्य और आयाम के द्वारा पूर्व-पश्चिम में वातवलय से रहित सम्पूर्ण क्षेत्र को व्याप्त करने का नाम कपाट समुद्धात है। केवली भगवान के जीव प्रदेशों का वातवलय से रुके हुए क्षेत्र को छोड़कर सम्पूर्ण लोक में व्याप्त होने का नाम प्रतर समुद्धात है। घन लोकप्रमाण केवली भगवान के जीव प्रदेशों का सर्व लोक के व्याप्त करने को लोकपूरण समुद्धात कहते है।

(ध. 4/1,3,2/28/8)

सभी केवलियों को होने तथा न होने विषयक दो मत

उत्कर्ष से जिनकी आयु छह महीने की अवशिष्ट रही है ऐसे समय में जिनको केवलज्ञान हुआ है वे केवली नियम से समुद्धात को प्राप्त होते हैं बाकी के केवलियों को आयुष्य अधिक होने पर समुद्धात होगा अथवा नहीं भी होगा, ऐसा कोई नियम नहीं है।

(भ.आ./मू./2103) (वसु. श्रा./530)

यतिवृषभाचार्य के उपदेशानुसार क्षीणकषाय गुणस्थान के चरम समय में सम्पूर्ण अघातिया कर्मों की स्थिति समान नहीं होने से सभी

केवली समुद्घात करके ही मुक्ति को प्राप्त होते हैं। परन्तु जिन आचार्यों के मतानुसार लोकपूरण समुद्घात करने वाले केवलियों की बीस संख्या का नियम है। उनके मतानुसार कितने ही केवली समुद्घात करते हैं और कितने नहीं करते । (ध.1/1,1,60/304)

मोक्ष जाने वाले सभी जीवों के केवली समुद्घात नहीं होता।

(ध. 13/5, 4, 31/151/13)

आयु के छह माह शेष रहने पर केवली के समुद्घात होने तथा न होने संबंधी दो मत :-

प्रश्न : छह माह प्रमाण आयु के शेष रहने पर जिस जीव को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है वह समुद्घात करके ही मुक्त होता है। शेष जीव समुद्घात करते भी हैं और नहीं भी करते हैं। भ.आ./मू./2103 इस पूर्वोक्त गाथा का अर्थ क्यों नहीं ग्रहण किया है।

उत्तर :- नहीं! क्योंकि इस प्रकार विकल्प के मानने में कोई कारण नहीं पाया जाता है, इसलिए पूर्वोक्त गाथा का उपदेश ग्रहण नहीं किया है ।

कदाचित् आयु के अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर होता है

आयु कर्म जब अन्तर्मुहूर्त मात्र शेष रहता है तब केवली समुद्घात करते हैं। (भ.आ./मू./2106) (स.सि./9/44/457/1) (क्ष.सा./620)

आत्मप्रदेशों का विस्तार प्रमाण

केवलीसमुद्घात के समय जब यह जीव लोक को व्यापता है उस समय जीव के मध्य के आठ प्रदेश मेरुपर्वत के नीचे चित्रा पृथ्वी के बज्रमय पटल के मध्य में स्थित हो जाते हैं और शेष प्रदेश ऊपर-नीचे और तिरछे समस्त लोक को व्याप्त कर लेते हैं।

दण्ड समुद्घात को करने वाले सभी केवली शरीर से तिगुणे बाहल्य से उक्त समुद्घात को नहीं करते क्योंकि उनके वेदना का अभाव है। (स.सि./5/8/274/11) (रा.वा. /5/8/4/450/1)

प्रश्न :- तो फिर कौन-से केवली शरीर से तिगुने बाहल्य से दण्डसमुद्धात को करते हैं?

उत्तर :- पल्यंक आसन से स्थित केवली उक्त प्रकार से दण्ड समुद्धात को करते हैं। (ध.11/4, 2,5,17/31/11)

केवलिसमुद्धात के चारों भेदों का वर्णन पण्डित टोडरमलजी विरचित टीका के आधार से करते हैं:-

1. दण्ड- स्थिति दण्ड समुद्धात विषैं एक जीव के प्रदेश वातवलय के बिना लोक की ऊँचाई किंचित् ऊन चौदह राजू प्रमाण है सो इस प्रमाणतै लंबै बहुरि बारह अंगुल प्रमाण चौड़े गोल आकार प्रदेश हैं। स्थिति दण्ड के क्षेत्र को नवगुवा कीजिए तब उपविष्टदण्ड विषै क्षेत्र हो है। सो यहाँ 36 अंगुल चौड़ाई है।

2. कपाट :- पूर्वाभिमुख स्थित कपाट समुद्धातविषैं एक जीव के प्रदेश वातवलय बिना लोक प्रमाण तो लम्बे हो हैं सो किंचित ऊन चौदह राजू प्रमाण तो लम्बे हो हैं, बहुरि उत्तर-दक्षिण दिशा-विषैं लोक की चौड़ाई प्रमाण चौड़े हो हैं सो उत्तर-दक्षिण दिशा विषैं लोक सर्वत्र सात राजू चौड़ा है तातैं सात राजू प्रमाण चौड़े हो हैं। बहुरि बारह अंगुल प्रमाण पूर्व पश्चिम विषैं ऊँचे हो हैं। पूर्वाभिमुख स्थित कपाट के क्षेत्र तै तिगुना पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट विषैं क्षेत्र जानना। उत्तराभिमुख स्थित कपाट के चौदह राजू प्रमाण तो लम्बे पूर्व-पश्चिम दिशा विषैं लोक की चौड़ाई के प्रमाण चौड़े हैं। उत्तर-दक्षिण विषैं क्रम से सात, एक, पाँच और एक राजू प्रमाण चौड़े हैं। उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाट विषैं तातैं तिगुनी छत्तीस अंगुल की ऊँचाई है।

3. प्रतर :- बहुरि प्रतर समुद्धात विषैं तीन वलय बिना सर्व लोक विषैं प्रदेश व्याप्त हैं तातैं तीन वातवलय का क्षेत्रफल लोक के असंख्यातवे भाग प्रमाण है।

4. लोकपूरण :– बहुरि लोकपूरण विषैं सर्व लोकाकाश विषैं प्रदेश व्याप्त हो है तातै लोकप्रमाण एक जीव सम्बन्धी लोकपूरण विषैं क्षेत्र जानना । (गो. जी. / जी. प्र. / 544)

कायोत्सर्ग स्थित केवली के दण्ड समुद्धात उत्कृष्ट 108 प्रमाण अंगुल ऊँचा, 12 प्रमाणांगुल चौड़ा और सूक्ष्म परिधि सैंतीस सही पंद्रह बटे एक सौ तेरह प्रमाणांगुल युक्त है। पद्मासन स्थित (उपविष्ट) दण्ड समुद्धात विषैं ऊँचाई 36 प्रमाणांगुल और सूक्ष्म परिधि एक सौ तेरह सही सत्ताईस बटे एक सौ तेरह प्रमाणांगुल युक्त है।

कुल आठ समय पर्यन्त रहता है

केवली समुद्धात का काल आठ समय है। दण्ड, कपाट, प्रतर लोकपूरण, फिर प्रतर, कपाट, दण्ड, और स्वशरीर प्रवेश इस तरह आठ समय होते हैं। (रा.वा. (1/20/12/77/27)

प्रतिष्ठापन व निष्ठापन विधिक्रम

समुद्धातगत केवली भगवान प्रथम समय में दण्डरूप समुद्धात करते हैं। द्वितीय समय में कपाटरूप समुद्धात करते हैं। तृतीय समय में प्रतररूप और चौथे समय में लोकपूरण समुद्धात करते हैं। पाँचवें समय में वे सयोगिजित लोक के विवरगत आत्म प्रदेशों का संवरण (संकोच) करते हैं । पुन: छठे समय में मन्थान (प्रतर) गत आत्म-प्रदेशों का संवरण करते हैं तथा सातवें समय में दण्डाकार और आठवें समय में दण्ड समुद्धातगत आत्म-प्रदेशों का संवरण करते हैं (भ.आ./मू.2109)

समुद्धात करने का प्रयोजन :–

जिसप्रकार गीला वस्त्र पसारने से जल्दी शुष्क होता है, परन्तु वेष्ठित वस्त्र जल्दी सूखता नहीं उसी प्रकार बहुत काल में होने योग्य स्थिति, अनुभागघात केवली समुद्धात द्वारा शीघ्र हो जाता है। (2107) स्थिति

बन्ध का कारण जो स्नेह गुण वह इस समुद्धात से नष्ट होता है, और स्नेहगुण कम होने से उसकी अल्प स्थिति होती है । (2108)। अन्त में योग निरोधकर वह धीर मुक्ति को प्राप्त करते हैं । (2110) ।

(भ.आ./मू. 2107-2110)

संसार की स्थिति का विनाश करने के लिए केवली समुद्धात करते हैं।

इसके द्वारा शुभ प्रकृतियों का अनुभाग घात नहीं होता

शुभ प्रकृतियों के अनुभाग का घात विशुद्धि, केवलीसमुद्धात अथवा योगनिरोध से नहीं होता है।

जब शेष कर्मों की स्थिति आयु के समान न हो तब उनका समीकरण करने के लिए किया जाता है।

आयु के समान ही अन्य कर्मों की स्थिति को धारण करने वाले केवली समुद्धात किये बिना सम्पूर्ण शीलों के धारक बनते हैं। (भ.आ. 2110)

जिनकी वेदनीय, नाम व गोत्र कर्म की स्थिति अधिक रहती है वे केवली भगवान समुद्धात के द्वारा आयुकर्म की बराबरी की स्थिति करते हैं। इस प्रकार वे सम्पूर्ण शीलों के धारक बनते हैं। (भ.आ.मू./2110-2111); (स.सि./9/44/457/1); (ध. 1/1,1, 60/304)

प्रश्न :- कौन-से केवली समुद्धात नहीं करते हैं?

उत्तर :- जिनकी संसार-व्यक्ति अर्थात् संसार में रहने का काल वेदनीय आदि तीन कर्मों की स्थिति के समान है, वे समुद्धात नहीं करते हैं; शेष केवली करते हैं। (ध.1/1,1,60/304/6)

कर्मों की स्थिति बराबर करने का विधि क्रम

प्रथम समय में आयु को छोड़कर शेष तीन अघातिया कर्मों की स्थिति के असंख्यात बहु भाग को नष्ट करते हैं इसके अतिरिक्त क्षीण

कषाय के अन्तिम समय में घातने से शेष रहे अप्रशस्त प्रकृति सम्बन्धी अनुभाग के अनन्त बहुभाग को भी नष्ट करते हैं।

द्वितीय समय में शेष स्थिति के असंख्यात बहुभाग को नष्ट करते हैं तथा अप्रशस्त प्रकृतियों के शेष अनुभाग के भी अनन्त बहुभाग को नष्ट करते हैं।

पश्चात् **तृतीय** समय में प्रतर संज्ञित मन्थ समुद्धात को करते हैं। इस समुद्धात में भी स्थिति व अनुभाग को पूर्व के समान ही नष्ट करते हैं।

तत्पश्चात् **चतुर्थ** समय लोकपूरण समुद्धात में समयोग हो जाने पर योग की एक वर्गणा हो जाती है। इस अवस्था में भी स्थिति और अनुभाग को पूर्व के ही समान नष्ट करते हैं।

लोकपूरण समुद्धात में आयु से संख्यातगुणी अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थिति को स्थापित करता है। उतरने के प्रथम समय से लेकर शेष स्थिति के संख्यात बहुभाग को तथा शेष अनुभाग के अनन्त बहुभाग को भी नष्ट करता है। यहाँ अन्तर्मुहूर्त जाकर तीनों योग उच्छ्वास का निरोध करता है पश्चात् अपूर्व स्पर्धककरण करता है पश्चात् अन्तर्मुहूर्तकाल तक कृष्टियों को करता है। फिर अपूर्व स्पर्धकों को करता है। योग का निरोध हो जाने पर तीन अघातिया कर्म आयु के सदृश हो जाते हैं। (ध. 6/1, 9,-8, 16/412-417/4) (ध.11/4,2,6, 20/133-134); (क्ष.सा. / 623)

स्थिति बराबर करने के लिए इसकी आवश्यकता क्यों –

प्रश्न :– संसार के विच्छेद का क्या कारण है ?

उत्तर :– द्वादशांग का ज्ञान, उनमें तीव्र भक्ति, केवलीसमुद्धात अनिवृत्तिरूप परिणाम ये सब संसार के विच्छेद के कारण हैं। परन्तु ये सब कारण समस्त जीवों में सम्भव नहीं है, क्योंकि दशपूर्व और नौ पूर्व

के धारी जीवों का भी क्षपक श्रेणी पर चढ़ना देखा जाता है। अतः वहाँ पर संसार व्यक्ति के समान कर्म स्थिति नहीं पायी जाती है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त में नियम से नाश को प्राप्त होने वाले पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण या संख्यात आवली प्रमाण स्थिति काण्डकों का विनाश करते हुए कितने ही जीव समुद्धात के बिना ही आयु के समान शेष तीन कर्मों को कर लेते हैं तथा कितने ही जीव समुद्धात के द्वारा शेष कर्मों को आयु के समान करते हैं। परन्तु यह संसार का घात केवली में पहले सम्भव नहीं है, क्योंकि पहले स्थिति काण्डक के घात के समान सभी जीवों के समान परिणाम पाये जाते हैं। (ध.1/1,1,60/304/9)

समुद्धात रहित जीव की स्थिति समान कैसे होती है :-

प्रश्न :- जिन जीवों के केवलीसमुद्धात नहीं होता उनके केवली समुद्धात हुए बिना पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र स्थिति का घात कैसे होता है?

उत्तर – नहीं, क्योंकि स्थितिकाण्डक घात के द्वारा उक्त स्थिति का घात बन जाता है। (ध.13/5, 4, 31/152/1)

शंका : जब लोकपूरण केवली समुद्धात होता है, तब अरहंत भगवान के आत्मा के प्रदेश हमें भी स्पर्श करते हैं क्या?

समाधान : हाँ! वस्तु स्थिति तो ऐसी ही है। लोकपूरण केवली समुद्धात के काल में अरहंत भगवान के आत्मा द्वारा मात्र हमें ही नहीं, अपितु तीन लोक के सर्व जीव/पुद्गलों को स्पर्श करने की परिस्थिति बनती है यह स्पर्श की बात उपचार मात्र ही है; क्योंकि स्वभाव से देखने पर कोई वस्तु अन्य वस्तु को स्पर्श नहीं करती। स्पर्श कहने का अभिप्राय तो मात्र इतना ही है कि लोकाकाश के जिन प्रदेशों पर हम रहते हैं, उन सब प्रदेशों को व्याप्त करते हुए अरहंत परमात्मा के प्रदेश लोकव्यापी फैलते हैं। इससे जगत के जीवों को किसी प्रकार की सुखानुभूति होती हो ऐसी बात नहीं है; क्योंकि इस लोकपूरण केवली समुद्धात में मात्र 1

समय का काल लगता है और 1 समय छद्मस्थ के ज्ञान का विषय नहीं बनता।

शंका :- आपने पहले केवली समुद्घात का काल 8 समय बताया था, अब 1 समय बता रहे हैं और हमने तो इसका काल 7 समय सुना है - इसमें कौनसा कथन यथार्थ है?

समाधान :- उक्त तीनों ही कथन विवक्षा भेद से सत्यार्थ हैं। केवली समुद्घात के 4 प्रकार हैं। मूल शरीर से आत्म प्रदेशों के बाहर निकलने से क्रमशः दण्डाकार- कपाटाकार-प्रतराकार-लोकपूरण-प्रतराकार- कपाटाकार- दण्डाकार- मूलशरीर- इसप्रकार मूल शरीर में प्रवेश करने तक कुल 8 समय ही लगते हैं। कुछ आचार्य मूल शरीर में वापस लौटने वाले अंतिम समय को गणना में नहीं लेते, इसकारण उनके अनुसार केवली समुद्घात का काल 7 समय होता है। ध्यान रहे 1 समय काल केवली समुद्घात का नहीं कहा गया है, वह तो उसके 1 भेद लोकपूरण समुद्घात का काल कहा है।

शंका :- केवली समुद्घात कौनसे कर्म के उदय से होता है ?

समाधान :- समुद्घात रूप इस प्रक्रिया में किसी भी कर्म के उदय होने का उल्लेख आचार्यों ने शास्त्रों में कहीं किया हो - ऐसा देखने में नहीं आया। युक्ति/ तर्क से भी कोई कर्म का उदय निमित्त बनता हुआ प्रतीत नहीं होता। इससे आत्मप्रदेशों की सहज एक क्षेत्र से अन्य क्षेत्र में गमन करने, वहाँ स्पर्श कर निश्चित समय में वापस लौटने आदि की स्वतंत्र योग्यता का भान होता है। अतः कहा जा सकता है कि यह जीव स्वयं अपनी तत्समय की योग्यता व क्रियावती शक्ति के योग से समुद्घात करता है।

शंका :- यह केवली समुद्घात अरिहंत अवस्था के अन्त में ही होता होगा?

समाधान :- अरिहंत परमात्मा के शास्त्रों में दो भेद बताये गये हैं - 13 वें गुणस्थान वाले सयोग केवली और 14वें गुणस्थान वाले अयोग

केवली। इनमें यह समुद्घात सयोग केवलियों के अर्थात् 13वें गुणस्थान में ही होता है। 14 वाँ गुणस्थान अयोग केवलियों का है, वहाँ अयोगी दशा में आत्मप्रदेशों की चंचलता नहीं होती; अतः जहाँ आत्मप्रदेशों की चंचलतारूप योग का ही अभाव हो गया, वहाँ आत्म प्रदेशों के देह से बाहर निकलकर लोक में व्याप्त होने रूप समुद्घात अवस्था कैसे बन सकती है ? अर्थात् 14 वें गुणस्थान में समुद्घात नहीं होता।

केवली समुद्घात तथा मारणांतिक समुद्घात के समय त्रस जीवों का सद्भाव त्रसनाली के बाहर भी संभव होता है सामान्यतः त्रसजीव त्रसनाली के बाहर नहीं पाये जाते हैं। मात्र 3 परिस्थितियों में ही त्रसनाली के बाहर पाए जाते हैं ।

1. उपपाद :- कोई एक इंद्रिय जीव त्रसनाली के बाहर था उसे अब त्रस बनना है और त्रस नाली में जन्म लेना है तब मरण के अगले ही समय से उसके त्रस नाम कर्म का उदय प्रारंभ हो जायेगा और इस तरह त्रस जीव त्रसनाली के बाहर भी पाया जा सकता है।

2. मारणांतिक समुद्घात में यदि किसी जीव को त्रसनाली के बाहर जन्म लेना है तो वह उसको छू करके आ जायेगा।

3. लोकपूरण समुद्घात के समय :- लोक पूरण समुद्घात के समय लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर आत्मा का एक-एक प्रदेश रहता है।

आत्मा के मध्य के रुचक प्रदेश संपूर्ण लोक का केन्द्र सुमेरु पर्वत की जड़ के नीचे चित्रा और वज्रा पृथ्वी के बीच में जो मुख्य आठ प्रदेश हैं उन आठ प्रदेशों में आत्मा के आठ प्रदेशों को केन्द्र में रखकर संपूर्ण लोक में व्याप्त हो जाते हैं। आत्मा के केन्द्र के 8 रुचक प्रदेशों में विशेष कुछ भी नहीं है। वे भी घूमते रहते हैं पर स्थान अपरिवर्तित रहता है। आत्मा कभी भी फोल्ड नहीं होता, संकुचित और विस्तारित होता है।

संकोच रूप अवस्था आत्मा की अशुद्ध अवस्था नहीं है यदि उसे अशुद्ध मानेंगे तो सिद्ध अवस्था को भी अशुद्ध मानना पड़ेगा।

केवली समुद्घात को छोड़कर अन्य सभी समुद्घातों का समय अंतर्मुहूर्त (असंख्यात समय) मात्र है।

आहारक समुद्घात को छोड़कर शेष समुद्घात छहों दिशाओं उर्ध्व, अधो, पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में होते हैं।

मारणांतिक समुद्घात में जहाँ नरक आदि में जीवों को मरकर उत्पन्न होना है वहाँ की ही दिशा में आत्मप्रदेश निकलते हैं । शेष पाँच समुद्घात छहों दिशाओं में होते हैं। क्योंकि वेदना आदि के वश से बाहर निकले हुए आत्मप्रदेश श्रेणी के अनुसार ऊपर, नीचे, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इन छहों दिशाओं में होते हैं।

वेदनादि छह समुद्घातों का काल असंख्यात समय है। और केवलीसमुद्घात का काल आठ समय है। (रा. वा. 1/20/12/77/26)

केवली समुद्घात के अलावा 6 समुद्घात छद्मस्थों में पाए जाते हैं, इसलिए इन्हें छाद्मस्थिक समुद्घात भी कहते हैं।

समुद्घात	**गति**
आहारक और केवली	मनुष्य
तैजस	मनुष्य, देव और तिर्यंच
वैक्रियिक	मनुष्य, देव, तिर्यंच, वायुकायिक और नारकी
वेदना, कषाय और मारणान्तिक	सभी जीवों में

समुद्घात को समझने के लाभ :–

1. समय की सूक्ष्मता ख्याल में आती है।

2. हमें यह ज्ञात होता है कि आत्मा का क्षेत्र से क्षेत्रांतर होने में किसी भी कर्म का योगदान नहीं है।

3. आत्मा के स्वतंत्र परिणमन का पता चलता है।

4. जिनागम का एकमात्र प्रकरण जो यह सिद्ध करता है कि मरण के पूर्व भी आत्मा इस देह से भिन्न है। मरण होने पर तो सारा जगत देह व आत्मा को भिन्न कहता है। पर देह में रहते हुए भी आत्मा इस देह से भिन्न है यह बात इस समुद्घात को पढ़ने से आसानी से समझ में आती है।

5. आत्मा के कभी टुकड़े नहीं होते चाहे नरकों में देह के टुकड़े – टुकड़े क्यों न कर देते हों।

तिल तिल करें देह के खंड,
फिर भी मैं तो एक अखंड।।

–●–

अनादि से जीव बाह्य विषयों में मोहित होकर उनसे सुखी होना चाहता है; परन्तु अभी तक सुखी नहीं हुआ, किन्हीं भी विषयों में उसे तृप्ति नहीं मिली; क्योंकि उनमें सुख है ही नहीं, उनके पीछे दौड़ने में मात्र दुःख और आकुलता ही होती है।

जब किसी ज्ञानी धर्मात्मा से सुनकर या जानकर कोई भव्य जीव अपने आत्मस्वरूप को शान्तिपूर्वक विचारता है, उससमय वह पाँच इन्द्रियों के किसी भी विषय को भोगता नहीं है, उसका चिन्तन भी नहीं करता। आत्म विचार ही करता है कि – "मेरा आत्मतत्त्व शरीर से भिन्न है, उसे साधकर मैं मोक्ष प्राप्त करूँगा" – ऐसे विचार के समय पाँच इन्द्रियों के बाह्य विषय यद्यपि छूट गये हैं; परन्तु वह जीव दुःखी नहीं है, परन्तु अन्तर में उसे शान्ति का वेदन ही होता है। वह आत्मा में अधिक गहराई तक उतरकर तन्मय हो तो उसे अतीन्द्रिय सुख का वेदन भी होगा; वही मोक्षसुख का स्वाद है। इसप्रकार विषयों के बिना अकेले आत्मा से मोक्षसुख का अनुभव होता है। आत्मा द्वारा होनेवाला ऐसा सुख ही नित्य रहनेवाला सच्चा सुख है।

कालचक्र पुस्तक के लेखक स्व. डॉ. संजीवकुमार गोधा आज अखिल भारतीय जैन समाज की एक जानी–मानी शख्सियत हैं। आपका जन्म राजस्थान की गुलाबी नगरी जयपुर में 26 नवम्बर 1976 को एवं निधन 17 फरवरी 2023 को हुआ। बचपन से ही माता–पिता द्वारा धार्मिक संस्कारों में पले–बढ़े डॉ. गोधा आज एक निर्भीक अंतरराष्ट्रीय जैन विद्वान हैं।

आप **इतिहास** एवं **जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन** विषयों में एम.ए., **जैनदर्शन** विषय से एम.फिल (गोल्ड मैडल), यूजीसी–नेट तथा **तीन लोक** विषय पर पीएच.डी. हैं।

देश–विदेश की समाज एवं विभिन्न संस्थाओं द्वारा आपको समय–समय पर विविध अवार्ड, सम्मान, पुरस्कार एवं उपाधियों से अलंकृत किया जाता रहा है, जिनमें अखिल भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् द्वारा **पण्डितप्रवर टोडरमल पुरस्कार व युवा विद्वत्रत्न,** श्रवणबेलगोला (महामस्तकाभिषेक) युवा सम्मेलन में **आदर्श जैन युवा राष्ट्रीय सम्मान,** शिकागो (अमेरिका) द्वारा **अति विशिष्ट सेवा अवार्ड,** उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान लखनऊ उत्तर प्रदेश सरकार व फिरोजाबाद सहित ब्रज क्षेत्र की सकल जैन समाज द्वारा **अध्यात्मचक्रवर्ती,** श्री परमागम ट्रस्ट सोनागिर द्वारा **अध्यात्मवेत्ता,** ब्राह्मी सुंदरी कन्या विद्या निकेतन सहित दिल्ली की अनेक संस्थाओं द्वारा **उपाध्यायकल्प** आदि उपाधियों सहित **आचार्य समन्तभद्र पुरस्कार, युवा जैन रत्न सम्मान,** कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा **अर्हत्वचन** पुरस्कार, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल चैरिटेबल ट्रस्ट द्वारा विशेष सम्मान आदि प्रमुख हैं।

आपके द्वारा लिखित एवं सम्पादित 13 पुस्तकें एवं 30 से अधिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आप 1998 से वीतराग विज्ञान मासिक के सह–सम्पादक एवं पाक्षिक समाचार पत्र जैनपथप्रदर्शक के सम्पादक रहे हैं एवं महाविद्यालय में शास्त्री वर्ग की विशेष कक्षाएँ लेते रहे हैं।

आप जयपुर के ऐतिहासिक मंदिर श्री दि. जैन पंचायत तेरहपंथ बड़ा (टोडरमलजी वाला मंदिर) के महामंत्री, श्री टोडरमल दि. जैन सि. महाविद्यालय के वरिष्ठ अध्यापक, जैन अध्यात्म एकेडमी ऑफ़ नॉर्थ अमेरिका के डायरेक्टर, विश्वस्तर पर संचालित अर्हं व सत्पथ पाठशाला के निदेशक एवं अ. भा. जैन युवा फैडरेशन राजस्थान के प्रदेश महामंत्री रहे हैं।

आप एक लोकप्रिय प्रवचनकार के रूप में विख्यात आध्यात्मिक प्रवक्ता थे। आपकी सरल, सुबोध, ओजस्वी शैली समाज में आकर्षण का विषय बनी रही। आप पूरे विश्व में सर्वाधिक ऑनलाइन लाइव सुने जाने वाले जैन विद्वान थे। आप 1993 से नियमित प्रवचन करते हुए अंतिम समय तक लगभग 28,000 से अधिक प्रवचन कर चुके हैं। सन् 2011 से प्रतिवर्ष लगभग 2 महीने विदेशों में जैनधर्म के प्रचार–प्रसार हेतु बुलाए जाते रहे हैं। सन् 2022 तक 18 विदेश यात्राओं में अमेरिका, कनाडा, इंग्लैण्ड, अफ्रीका, सिंगापुर, ऑस्ट्रेलिया, दुबई आदि अनेक देशों के लगभग 40–50 शहरों में अपने प्रभावक प्रवचनों के माध्यम से धर्मध्वजा फहरा चुके हैं।

1 जुलाई 2021 से प्रतिदिन रात्रि 10 बजे नियमित रूप से टी.वी. के पारस चैनल पर एवं समय–समय पर जिनवाणी व आदिनाथ टी.वी चैनलों पर आप के मार्मिक प्रवचनों का प्रसारण होता रहा है। YouTube पर Dr. Sanjeev Godha नाम से चैनल पर आपके हजारों वीडियो प्रवचन उपलब्ध हैं, जिनमें जैन दर्शन के लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों का समावेश है। आपको जैन–अजैन 50 हजार से अधिक लोग फॉलो करते रहे हैं, जिससे चैनल पर करोड़ों व्यूज़ हैं। आपके निधन से समाज को अपूर्णीय क्षति हुई है।